'ओ३म्'

महर्षि का ऐक्यवाद



॥ ओ३म् ॥

श्रद्धा पुष्पमाला का ६० वां पुष्प

महर्षि का ऐक्यवाद

[illegible]

लेखक

श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' एम. ए.

प्राध्यापक

दयानन्द कालेज, अबोहर (पं०)

प्रकाशक

आर्य कुमार सभा किंग्ज़वे (रजि०) दिल्ली-९

२७ मार्च, १९७१

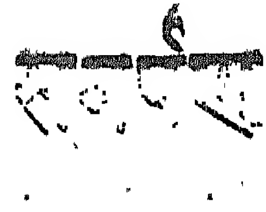
प्रथम वार २२००

मूल्य : ७० पैसे

प्रकाशक :
आर्य कुमार सभा किंग्ज़वे (रजि०)
दिल्ली-९

मूल्य : सत्तर पैसे

मुद्रक :
जागती जोत प्रैस
एन. ८, ग्रेटर कैलाश मार्किट
नई दिल्ली-४८



मैं अपनी
इस पुस्तक को
नित्य ईश्वर के
नित्य वेद ज्ञान केलिए,
महर्षि दयानन्द जी महाराज
के उद्यान केलिए,
तिल-तिल जलने वाले,
अविराम संग्राम करने वाले,
प्रकाण्ड विद्वान, वीर सेनानी,
आदर्श आचार्य, निर्भीक नेता,
सुधीर साधु, अडिग तपस्वी,
पूज्यपाद स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज
की मधुर जीवनदायिनी
स्फूर्तिदायक स्मृति में
सादर समर्पित
करता हूँ।

उनका ऋणी
राजेन्द्रपाल 'जिज्ञासु'

प्रकाशकीय

परम पिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा तथा महती कृपा से अपने कृपालुओं, सहयोगियों, सदस्यों एवं पाठकों के कर कमलों में 'महर्षि का ऐक्यवाद' समर्पित करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। इस पुष्प के साथ सभा अपने साहित्य की १, ४७, ००० प्रतियाँ प्रकाशित कर चुकी है।

सुप्रसिद्ध लेखक श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने 'महर्षि के ऐक्यवाद' जैसी दार्शनिक पुस्तक को सरस एवं संक्षिप्त रूप में लिख कर सामान्य पाठकों के सम्मुख रखा है, उसके लिए हम उनके बड़े आभारी हैं। इस पुस्तक की भाषा में सुधार करने तथा प्रूफ पढ़ने में श्री कृष्णकुमार गोस्वामी, एम. ए. ने जो सहयोग दिया है, उसके लिए उनके अत्याभारी हैं।

सभा ने यह प्रकाशन विभाग व्यापार के लिए नहीं अपितु उत्तम साहित्य के प्रकाशक प्रचार व प्रसार के लिए आरम्भ किया हुआ है। सभा प्रकाशन विभाग के दो प्रकार के सदस्य बनाती है।

१. **आजीवन सदस्य** :—जो सज्जन न्यून से न्यून एक सौ रुपया देते हैं वे प्रकाशन विभाग के आजीवन सदस्य होते हैं।

२. **साधारण सदस्य** :—न्यून से न्यून दस रुपये प्रतिवर्ष देने वाले सज्जन प्रकाशन विभाग के साधारण सदस्य होते हैं। इनका नाम किसी भी प्रकाशन में एक बार प्रकाशित होता है। सभी सदस्यों से अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेज कर अनुगृहीत करें।

अन्त में जनता से सहयोग की प्रार्थना है। अधिक से अधिक हमारे प्रकाशन विभाग के सदस्य बनें और हमारे साहित्य को घर-घर पहुंचायें।

कंवल नैन जौहर, एम. ए.
प्रकाशन मंत्री

भूमिका

प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' आर्यसमाज के विचारशील तथा भावुक युवक हैं, जिन पर इस संस्था को गर्व हो सकता है। आपने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रवचन किया है। प्रस्तुत ग्रंथ ऋषि दयानन्द का ऐक्यवाद उनके विराट, गम्भीर तथा चिंतनशील मस्तिष्क का प्रतिफलन है। ऋषि दयानन्द को अब तक विद्वान-इतिहासकारों तथा लेखकों द्वारा विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास किया है। परन्तु अनेक व्यक्ति एवं विचारक ऐसे भी हैं जो ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों तथा सिद्धांतों में साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाने तथा सामाजिक सौहार्द-भाव को प्राप्त करने के बीज देखते हैं। यह भ्रान्ति सामान्य जनता को ही नहीं, बड़े-बड़े बुद्धिमान् मनुष्यों को भी हुई है और आज भी है। १६२४ में महात्मा गाँधी जैसे राष्ट्रनेता ने भी अपने 'यंग इण्डिया' पत्र में लिख दिया था कि स्वामी दयानन्द की शिक्षा असहिष्णुता का प्रचार करती है तथा सत्यार्थप्रकाश एक नितान्त निराशाजनक पुस्तक है। कहना नहीं होगा कि आर्यसमाज ने मिथ्या आरोप का दृढ़तापूर्वक प्रतिवाद किया था। प्रो० जिज्ञासु ने धर्म, समाज, राष्ट्र, दर्शन आदि विभिन्न क्षेत्रों में पारदर्शी ऋषि दयानन्द की विचारधारा की महत्ता तथा उनमें विद्यमान एकता की मूल भावना को नितान्त सुगम ढंग से प्रस्फुटित किया है। मुझे आशा है कि ऋषि के मन्तव्यों को समझने में इस पुस्तक से निश्चित सहायता मिलेगी।

दयानन्द आश्रम, अजमेर
मार्गशीर्ष पूर्णिमा २०२६ वि०

डा० भवानीलाल भारतीय,
संयुक्त मंत्री, परोपकारिणी सभा अजमेर
मंत्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान।

दो शब्द

दो वर्ष पूर्व 'ऐक्यवाद का पोषक' शीर्षक से मेरा एक लेख साप्ताहिक 'वैदिक धर्म' उर्दू जालन्धर छावनी में प्रकाशित हुआ। पाठकों ने उस लेख को अत्यन्त उपयोगी एवं मौलिक समझा। कुछ सज्जनों ने इस विषय पर सविस्तार लिखने की प्रेरणा दी। इसी विषय पर वैदिक धर्म में मैंने एक और लेख लिखा। वह लेख 'भारतीय संस्कृति क्या है?' शीर्षक से दैनिक 'प्रताप' जालंधर नगर में भी छपा। मेरे अभिज्ञ बन्धु बरनाला निवासी वेद-निष्ठ डा० जगन्नाथ शोरी ने उसे पढ़ कर इस विषय पर कुछ और लिखने का प्रोत्साहन दिया। समय निकलता रहा, परन्तु मैं अपने विचारों को पुस्तक का रूप न दे पाया।

समस्या यह भी थी कि लिख तो दूं परन्तु प्रकाशित कौन करेगा? इसी बीच कुछ आर्य प्रकाशकों ने मेरी कोई पुस्तक प्रकाशित करने की इच्छा व्यक्त की। मेरे मान्य मित्र, ऋषि मिशन के दीवाने श्री इकबालराय ने आग्रह किया कि मैं अपने पुराने वचन को पूरा करते हुए आर्य कुमार सभा किंग्ज़वे कैम्प के लिए एक नई पुस्तक लिखकर दूं। उन्हीं की आज्ञा के परिणामस्वरूप यह पुस्तक पाठकों के हाथों पहुंचा पाया हूँ। आर्य कुमार सभा के उत्साही कार्यकर्त्ताओं का उनके प्रशंसनीय प्रयास के लिए मैं आभारी हूँ।

पुस्तक के कुछ अंश मासिक परोपकारी व आर्य गजट साप्ताहिक में भी प्रकाशित हो चुके हैं। अपने विषय की आर्य साहित्य में यह पहली पुस्तक है। आशा है पाठक इससे लाभान्वित होंगे। यदि मेरी इस कृति का वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में कुछ उपयोग हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

बाल्यकाल में दिवंगत श्री पं० हीरानन्द जी से लेकर आज तक श्री पं० गंगाराम जी, श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री (लेखराम नगर कादियां), श्री पं० शान्ति प्रकाश जी आदि जिन-जिन विद्वानों के व्याख्यानों से मैंने लाभ उठाया है और मुनिवर गुरुदत्त विद्यार्थी, धर्मवीर लेखराम से लेकर आधुनिक युग के आर्य साहित्यकारों तक जिन-जिन के ग्रंथ रत्नों से मुझे ज्ञान-प्रकाश मिला है, ऋषि के उन सभी निष्ठावान् शिष्यों का मैं हृदय से आभार मानता हूँ। पुस्तक में भाषा व शैली आदि की जो त्रुटियाँ पाठकों को अखरें उनकी उपेक्षा करके वे वैदिक धर्म व दर्शन की विशेषताओं को समझकर वेदादेश का पालन करेंगे, ऐसी मुझे आशा है।

प्रिय राकेश ने भी पुस्तक लिखने में सहयोग दिया, उसका भी धन्यवाद।

महाशय राजपाल
बलिदान पर्व २०२६
६-४-१९६९

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

वैदिक धर्म गान

एकता का ऐक्यवाद

सत्य ज्ञान की है खान
परमदेव का विधान
ऋषि मुनि गायें गान
मानव धर्म यह महान
यह अनादि नित्य नाद
यह है ईश का प्रसाद

आओ विश्व को जगायें
तान वेद की सुनायें
पाप ताप सब मिटायें
दम्भ दुर्ग सकल ढायें
मिटें व्यर्थ के विवाद......

आओ मिलके हम विचारें
दूई द्वेष को विसारें
अपना आप हम सुधारें
भद्र भावना प्रसारें
एकता का ऐक्यवाद......

लेखराम की पुकार
करो वेद का प्रचार
दीनजन से करो प्यार
दैत्य दल को दो लताड़
तजो आर्यजन प्रमाद
यह अनादि नित्य नाद

बतायें हम कि दयानन्द क्या थे।

एकता व शान्ति की चर्चा तो सभी करते हैं। एकता का नारा भी सभी लगाते हैं। एकता केलिए प्रयत्नशील भी कई हैं। एकता केलिए प्रयास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की ईमानदारी (Integrity) पर सन्देह भी नहीं किया जा सकता। मिलाप की इच्छा रखने वाले तथा मिलाप केलिए दौड़धूप करने वाले व्यक्ति सत्कार के योग्य हैं। रोग का उपचार करना आवश्यक है परन्तु यह भी तो देखना चाहिए कि प्रस्तावित निदान ठीक भी है अथवा नहीं।

युग नेता स्वामी दयानन्द इस युग में मानव मात्र के सुधार व उपकार केलिए कटिबद्ध होकर कार्य-क्षेत्र में उतरे। अदूरदर्शी, मूर्ख तथा अभागे लोगों ने उस सत्यनिष्ठ महापुरुष को नहीं पहचाना। कुछ पोटार्थी, मतांध, मतिमन्द लोगों ने जानबूझ कर उस विमल विभूति को ठीक रूप में प्रस्तुत नहीं किया। ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में झुलस रहे कुछ साम्प्रदायिक तत्त्वों ने अपने निहित स्वार्थों के कारण उसके वास्तविक रूप से संसार को परिचित नहीं होने दिया। श्री स्वामी समर्पणानन्द ने अपने एक भावपूर्ण गीत में बहुत सुन्दर लिखा है :—

उस जोगी का भेद न पाया।
नादान लोगों ने, उस जोगी का भेद न पाया।

आइए ! मानवता की मूर्त्ति देव दयानन्द महान् का यथार्थ रूप, सुन्दर स्वरूप, अनूप रूप, विराट रूप जानने का प्रयास करें।

ऋषि की उत्कट इच्छा

महर्षि दयानन्द जी ने अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में मनुष्य व परिभाषा लिखते हुए अपने हृदय की मनोहारिणी भावना बड़े सरल, सर व सजीव शब्दों में व्यक्त की है। मुनियों के मान दयानन्द को समझने लिए ऋषि के ये शब्द हमें अवश्य पढ़ने चाहिए।

"मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि-लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान से भी न डरे औ धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यों न ह उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महा बलवान और गुणवान भी क्यों न हो तथापि उनका नाश, अवनति औ अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्याय कारियों के बल की हानि न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भ भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक न होवे।"

—स्वमन्तव्यामन्तव्

इस अमिट चाह व अदम्य उत्साह के साथ ऋषि ने जन कल्याण क कार्य आरम्भ किया। इस पथ पर उन्होंने दारुण दुःख सहन किये, तिल-तिल जिए और इसी पथ पर चलते हुए उन्होंने अपने जीवन की आहुति दी प्रत्येक बुराई से उन्होंने लड़ाई ली। "चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक न होवे।" अपने इन वचनों का अनुवाद ऋषि ने अपने जीवन के रूप में किया। वेद की आज्ञा है 'अपघ्नन्तो अराव्णः' अर्थात् असभ्य और मानवताघाती तत्त्वों को खदेड़ा। ऋषि ने इसी वैदिक भावना से अद्य अज्ञान की समस्त शक्तियों से लोहा लिया। यशस्वी भारतीय विद्वान डा० अविनाशचन्द्र जी वसु ने लिखा है :—

"The Veda is uncompromising in its opposition to evil". अर्थात् वेद बुराई से लड़ाई करते हुए समझौता नाम की नीति को नहीं जानता। सिंधी बाबा टी० ल० वासवानी जी ने अपनी पुस्तक TORCH

BEARER और RISHI DAYANAND में लिखा है :—"He cannot bartar conviction for convenience." अर्थात् वह (महर्षि दयानन्द) तात्कालिक लाभ केलिए सिद्धान्तों का बट्टा-सट्टा नहीं कर सकते।

महर्षि की इसी सिद्धान्त निष्ठा, सत्यप्रियता व दृढ़ता पर महान् मनीषी आचार्य चमूपति जी ने लिखा है :—

"Cruelty could not daunt him nor cold hospitality allure him" अर्थात् अन्याय उनको दबा न सका और न किसी का आतिथ्य या आवभगत उन्हें फंसा सका। मस्ताना जोगी सत्य की सुरीली रागिनी सुनाता अपने पथ पर सूर्य व चन्द्र के समान चलता गया।

बस यही तो मतवादियों की दृष्टि में उसका दोष था। आज के वोट-नोट वादी नेताओं की दृष्टि में भी देव दयानन्द की यही भूल थी। रंग बिरंगी टोपियां धारण करके राजनैतिक मंचों पर गला फाड़-फाड़ कर एकता का उपदेश देने वाले कुर्सीवादी लीडर ऋषि दयानन्द का नाम लेने से इसी कारण घबराते हैं कि दयानन्द समझौतावादी नहीं थे, सत्यवादी थे।

ऐक्यवादी दयानन्द

संसार में एकता केलिए कोई भी कार्य करें, हम उसे माननीय मानेंगे। जाने या अनजाने, जिस सीमा तक जो कोई भी प्राणियों की भलाई करता है वह वहाँ तक आदर का पात्र है। परन्तु मानवीय संस्कृति के इतिहास का अवलोकन करने से पता चलता है कि ऋषि दयानन्द जी विश्व में सबसे बड़े ऐक्यवादी हुए हैं। उनका कोई भी साथी व सहायक नहीं था। उनके पास कोई मठ, मन्दिर, धन, सम्पदा भी नहीं थी। साधनहीन योगी, अलबेला, अकेला, निर्भीक होकर वेद तिमिर नाशक रश्मियों के प्रकाश को बखेरता हुआ अज्ञान-अन्धकार की सारी सेना से जूझ पड़ा। सारा विश्व विरोधी था पर दयानन्द के पवित्र हृदय में तनिक भी कम्पन पैदा नहीं हुआ। वह अडिग व अडोल रहा। यशस्वी इतिहासकार श्री के० पी० जायसवाल ने सारगर्भित शब्दों में इतिहास के इस सत्य को इस प्रकार कहा है :—

"The Sanyasi Dayananda gave freedom to the soul of the Hindu, as Luther did to the European. And he forged

that freedom from inside, that is literature itself........... Dayananda was not only the greatest Indian of the nineteenth century............in the nineteenth century there was nowhere else such a powerful teacher of monotheism, such a preacher of the unity of man, such a successful crusader against capitalism in spirituality."

इसका सारांश यह है कि साधु दयानन्द ने हिन्दू की आत्मा को ऐसे ही मुक्त किया जैसे लूथर ने योरुप वालों की। दयानन्द उन्नीसवीं शताब्दी के भारत की महानतम विभूति ही नहीं थे, अपितु उन्नीसवीं शताब्दी में विश्व भर में उन जैसा कुरीति निवारक, आध्यात्मिक जागीरदारी के विरुद्ध लड़ने वाला, मानवीय एकता व एकेश्वरवाद का पोषक व प्रचारक दूसरा कोई नहीं था।

महर्षि दयानन्द सत्यवादी थे, मानवतावादी थे और थे वह ऐक्यवादी। वह अद्वैतवादी तो नहीं थे, त्रैतवादी थे। अद्वैतवाद व ऐक्यवाद में बड़ा भेद है। अद्वैतवादी के ऐक्यवादी होने का प्रश्न ही नहीं उठता। एकता अनेकों को एक-सूत्र में पिरोने का नाम है। जो लोग संसार में ब्रह्म के सिवा किसी और की सत्ता ही नहीं मानते, वे एकता लायेंगे किसमें? ऋषि दयानन्द ईश्वर व प्रकृति के अतिरिक्त असंख्य जीवों की सत्ता को स्वीकार करते हैं। इन असंख्य जीवों के कल्याण केलिए ऋषि ने विश्व में ऐक्यवाद का शंखनाद फूंका.

ऋषि ने लिखा है :—

"मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।" —**स्वमन्तव्यामन्तव्य**

कोई नया मत अथवा पंथ खड़ा करके ऋषि मानवों को विभक्त करने और वैमनस्य फैलाने नहीं आए। मानवों को एकता के सूत्र में पिरोने की मनोकामना व्यक्त करते हुए स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में लिखा है :—

"जो मतमतान्तरों के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं प्रसन्न (पसन्द)

नहीं करता क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्वसत्य का प्रचार कर सब को ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा के सबसे सबको सुख लाभ पहुंचाने केलिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।"

नान्यः पन्था

मानव-कल्याण की भद्र भावना रखने वाले प्रत्येक निष्पक्ष व्यक्ति को आजन्म ब्रह्मचारी दयानन्द के निम्न शब्दों पर बार-बार विचार करना चाहिए। ऋषि ने अपने इन शब्दों में सूक्ष्म दार्शनिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त एक ऐतिहासिक तथ्य भी रखा है। साथ ही साथ अपने हृदय की वेदना भी ऋषि ने इन शब्दों में प्रकट की है। दयानन्द दर्द का दरिया है। उस की भावना इन शब्दों में ओतप्रोत है। ऋषि दयानन्द को समझने केलिए पाठकों को ये शब्द अपनी आँखों के सामने रखने चाहिए।

"मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए। किन्तु, जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिए वह सत्य मतको प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित करदें, परन्तु वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनंद में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य को ग्रहण और असत्य

का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं ।" (सत्यार्थ प्रकाश भूमिका)

जो लोग सत्य की उपेक्षा कर मानव समाज को एक सूत्र में पिरोने का प्रयत्न करते हैं, ऋषि दयानंद जी महाराज का उनसे मौलिक भेद है । सृष्टि का आधार सत्य है । यह सच्चाई स्थायी है, नित्य है, अनादि है, सार्वभौमिक और अपरिवर्तनशील है । वेद में आता है :—

'सत्येनोत्तभिता भूमि:' । भूमि का आधार सत्य है। बुराई और कुटिलता को साथ लेकर कोई मनुष्य समाज का भला नहीं कर सकता । वेद मनुष्यों को उद्बोधन करते हुए कहता है :—

अत्रा जहाम ये असन्नशेवा:
शिवान वयम् उत्तरेमाभि वाजान् ।।

अर्थात् बुराई के पोषकों, भलाई के शत्रुओं को यहीं छोड़कर कल्याणकारी शक्तियों की ओर चलो । पार जाने की यही विधि है । डा० अविनाशचन्द्र वसु के शब्दों में :—"There should be no compromise with powers of evil". आसुरी शक्तियों से किसी प्रकार का भी समझौता नहीं होना चाहिए । सत्य को ओझल करके समझौतावादी नीति से किया गया सुधार मानवों में ऐक्यवादी भावना का संचार नहीं कर सकता । महान् दार्शनिक श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के शब्दों में, "इनका सुधार एक तंग चादर की भांति है कि एक अंग ढांकिए तो दूसरा नंगा हो जाता है ।"

ऐक्यवाद की सुर-तान सुनाने वाले दयानंद ने अवैदिक मतों का खंडन किया है परंतु सत्य असत्य का निर्णय करने केलिए । इन मतों के सम्बन्ध में महर्षि ने लिखा है :—"इसलिए जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बाइबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति केलिए प्रयत्न करता हूँ, वैसा सबको करना योग्य है ।"

मनुष्यों को एकता के सूत्र में पिरोने केलिए ऋषि ने जो प्रयास किया, जो मार्ग दिखाया, वह कितना उपयुक्त है इसका निर्णय सुविज्ञ निष्पक्ष पाठक स्वयं करें । सत्य-असत्य की इस लड़ाई में प्रत्येक निष्पक्ष व्यक्ति का हृदय हमारे लिए न्यायाधीश होगा । कोई भी निर्णय दे, हम स्वीकार करेंगे ।

ईश्वर एक है

महर्षि ने ऐक्यवाद का शंखनाद करते हुए कहा कि परमात्मा एक है, एक है और एक है। वह अपने सामर्थ्य से सृष्टि की रचना करता है। उसे सृष्टि की रचना करने और उसका संचालन करने केलिए किसी की भी सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती। परमात्मा पूर्ण है, सर्वशक्तिमान है और विश्व का वही एक नियन्ता है। वेद ने कहा है :—

'विश्वस्य मिषतो वशी'

यह सारा विश्व उसके वश में है। सृष्टि का संचालन करते हुए उसे दूतों-पूतों की आवश्यकता नहीं। ऋषि ने यह वैदिक विचारधारा प्रवाहित करके मानवीय एकता की एक कड़ी जोड़ी। संसार में ईश्वर के नाम पर तो झगड़े थे ही, ईश्वर के दूतों-पूतों के नाम पर भी झगड़े हो रहे थे। इस्लाम ने, ईसाई मत ने, पौराणिकों ने अनेक देव दूतों की कल्पना करके मानवीय विघटन का बीज बोया। इन देव-दूतों की धांधली की, कदाचार की, अशिष्टाचार की तथा भ्रष्टाचार की अनेक गाथायें सर्वविदित हैं। यथा, एक पौराणिक गाथा है कि एक व्यक्ति वृक्ष के नीचे सोया हुआ था। वहीं उसकी मृत्यु हो गई। उसके नरक में ले जाने केलिए यम के कुछ दूत आए। इतने में विष्णु के दूत उसे स्वर्ग में लेने आ गये। दोनों पार्टियों में इसी बात पर झगड़ा बढ़ गया। वैष्णवों ने कहा, देखो इसके माथे पर वैष्णवों का चिह्न है अतः यह

बैकुण्ठ में जाएगा। तब उसे बैकुण्ठ में ले जाया गया। वास्तविकता थी कि जब वह सोया हुआ था तो वृक्ष पर बैठे पक्षी ने उसपर बीठ क थी। बीठ उसके माथे पर ऐसे गिरी कि धुनाक्षर न्याय के अनुसार वैष्णवों का चिह्न बन गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सदाचार, सत्य, संयम, सेवा, सत्कर्म अ सबकी उपेक्षा करते हुए विष्णु के दूत केवल चिह्न मात्र के कारण व्यक्ति को स्वर्ग पहुंचा रहे हैं। अन्य मतों में भी देव दूतों के बारे में प्रकार की कहानिया पाई जाती हैं। इस्लाम ईश्वर के एकत्व की दुहाई देता है, परन्तु इस्लाम में भी अल्लाह और मुहम्मद साहेब के म जबराईल सन्देश लाने और पहुंचाने का कार्य करता है। ऐक्यवादी दया को दूतों का अस्तित्व अमान्य है।

पौराणिकों में तो शिव, विष्णु और ब्रह्म के नाम पर भी झगड़े खड़े गये। पुराण १८ हैं। ये १८ पुराण इन तीनों के कारण विभागों में बंट ग शैव पुराण, वैष्णव पुराण और ब्रह्म पुराण। शैवों का भगवान् शिव है अ वैष्णवों का विष्णु। शिव और विष्णु के कारण हिन्दुओं में दो सम्प्रद बन गये। दोनों एक दूसरे के शत्रु। शैवों का विश्वास विष्णु में नहीं अ वैष्णवों का शिव में नहीं। वैष्णव शिव को विष्णु जैसा नहीं मानते अ शैव विष्णु को अलग भगवान् मानते हैं और वे अपने भगवान् को श्रेष्ठ मा हैं और वे अपने को वरिष्ठ समझते हैं। दोनों में कनिष्ठ कौन है इसका निर हम भी क्या दें ?

इस झगड़े ने हिन्दुओं में फूट की दुर्भावना को बड़ा बल प्रदान कि है। लोग आर्यों पर आरोप लगाते हैं कि हम विष्णु को नहीं मानते, शिव को नहीं मानते। हम क्या मानते हैं और क्या नहीं मानते यह अभी बताएंगें परन्तु पौराणिक बन्धु पक्षपात रहित होकर बताएं क्या शि को मानने वाले विष्णु को मानते हैं ? यदि मानते हैं तो शैव क्यों कहल हैं ? फिर चिह्न का झगड़ा क्या ? क्या वैष्णव भाई शिव जी को मा हैं ? यदि मानते हैं तो अपने को वैष्णव क्यों कहते हैं ? फिर शंख, च गदा और पद्म का हठ क्य ? फिर दोनों सम्प्रदायों में पृथकता कि

कारण है ? झगड़ा किस बात पर हैं ?

यहीं तक होता तो भी कुछ बात थी। झगड़ा तो शिव और विष्णु के कुटम्ब की पूजा का भी है। पार्वती की पूजा करने वाले लक्ष्मी की पूजा नहीं करते और लक्ष्मी वाले पार्वती से बिदकते हैं। इन झगड़ों के कारण समय-समय पर विवाद और फिसाद खड़े होते रहे हैं।

ऐक्यवादी दयानन्द शिव और विष्णु के नाम पर मानव जाति को विभक्त नहीं करते। ऋषि ने वेद शास्त्रों के सबल प्रमाण देकर प्रबल युक्तियों से सिद्ध किया कि ईश्वर एक है, एक है और एक है। वही शिव है, वही विष्णु है, वही ब्रह्म है, वही इन्द्र है और वही रुद्र है। सर्वव्यापक होने के नाते उसका नाम विष्णु है, कल्याणस्वरूप होने के नाते वही विश्व नियन्ता शिव कहलाता है और सृष्टि रचयिता होने के नाते उसी परमेश्वर का नाम ब्रह्म है। वेद की ध्वनि ऋषि ने गुञ्जाते हुए कहा :—

एकं सद् विप्र बहुधा वदन्ति।

ईश्वर एक है, विद्वान उसको अनेक नामों से पुकारते हैं। शताब्दियों से चला आ रहा शैवों व वैष्णवों का विवाद ऋषि ने वेद का एक ईश्वरवाद देकर समाप्त कर दिया। हम विष्णु और शिव को दो नहीं मानते। ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, अजर, अजन्मा व अविनाशी है अत: उसके विवाह, शादी-सगाई व बाल-बच्चों का प्रश्न नहीं उठता अत: उनके नाम पर पैदा होने वाले झगड़े तथा पार्वती और लक्ष्मी की पूजा का विवाद सब अनर्गल बातें हैं। एकता चाहने वालों को ऋषि का ऋणी होना चाहिए कि उसने एक भयङ्कर त्रिवाद अपनी सूझबूझ से समाप्त कर दिया। उसने एकता की दिशा दिखा दी। अब उस दिशा में चलना या न चलना लोगों का काम है। सूर्य के प्रकाश से संसार आलोकित है। जो अभागा इस प्रकाश से लाभावन्ति न होना चाहे, उसका क्या किया जाए ? जिनको अब भी शैवों और वैष्णवों के झगड़ों में स्वाद आता है, ईश्वर उनको सुगति व सुमति दें ताकि वे वेद ज्ञान की ज्योति से अपना उद्धार, सुधार व उपकार कर सकें।

कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि हमने उपासना ही करनी है, किसी की

भी कर ली। ऋषि दयानन्द ऐक्यवादी हैं। उनका कहना है कि, "उसी की उपासना करनी योग्य है।" हर कङ्कर को शंकर मानकर मनुष्य का अध:पतन ही होगा। महर्षि ने ऋग्वेद भाष्य में लिखा है, "जो मनुष्य उस परमेश्वर को छोड़ के दूसरे को इष्टदेव मानता है वह भाग्यहीन बड़े-बड़े दु:खों को प्राप्त होता है।"

श्री राम और श्री कृष्ण

शिव और विष्णु के नाम और पूजा का झगड़ा तो था ही। पौराणिकों के अवतारवाद ने हिन्दुओं में भेदभाव पैदा करने में रही-सही कसर निकालने केलिए श्री राम और श्री कृष्ण के नाम पर भी एक झगड़ा खड़ा कर दिया। पौराणकों का विश्वास है कि राम बारह कला सम्पूर्ण थे और श्री कृष्ण सोलह कला सम्पूर्ण थे। थे दोनों ही अवतार। दोनों ही विष्णु के। क्या विचित्र तमाशा है दोनों को भगवान् माना जाता है और एक को बारह कला सम्पूर्ण कहा जाता है और दूसरे को सोलह कला। क्या भगवान् भी छोटा बड़ा होता है? क्या वह घटता-बढ़ता है क्या वह उसकी योग्यता व क्षमता न्यूनाधिक होती रहती है? इस पौराणिक भावना ने भेदभाव को यहां तक बढ़ाया कि तुलसीदास जी जैसे सन्त ने श्री कृष्ण महाराज की वंशी वाली प्रतिमा को देखकर शीश निवाने से इनकार कर दिया। और कहा :—

बलिहारी छवि आपकी, भले बने हो नाथ।
'तुलसी' मस्तक तब नवे, धनुष बाण हो हाथ॥

अर्थात् मैं तब शीश झुकाऊं जब धनुषधारी श्री राम सामने हों। तुलसी जैसे महाकवि के मन में श्री कृष्ण जी महाराज के प्रति इस प्रकार की भावना देखकर दु:ख होता है। पर आश्चर्य की क्या बात है अवैदिक मतों की विशेषता ही यही है कि इन्होंने विभूतियों व मुनियों के नाम पर भी भेदभाव पैदा कर दिये। कहने को पौराणिक कहते हैं कि ऋषि दयानन्द के सैनिक राम को नहीं मानते। कोई कहता है कृष्ण को नहीं मानते। तथ्य यह है कि तुलसी जी जैसे बड़े-बड़े पौराणिक भी श्री कृष्ण जी के प्रति आदर का भाव नहीं रखते और श्री कृष्ण के नाम की दुहाई देने वाले कई

पौराणिक श्री राम के प्रति अभद्र भावना रखते हैं ।

आर्य लोग रामचन्द्रजी को महान मानते हैं और श्री कृष्णचन्द्रजी को भी महान मानते हैं। दोनों पूज्य थे। दोनों विभूतियाँ अनुकरणीय हैं। छोटे बड़े का, भेदभाव का प्रश्न निर्मूल है। बारह कला या सोलह कला का बखेड़ा हम नहीं मानते। हमारे लिए श्री राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। श्री कृष्ण योगेश्वर थे। श्रीकृष्ण की निन्दा ऋषि दयानन्द जी महाराज को असह्य है। सत्यार्थ प्रकाश में आपने लिखा है :—

"देखो। श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से...। इसको पढ़-पढ़ा सुन-सुना के अन्य मतवाले श्रीकृष्णजी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?"

हम समझते हैं कि प्रत्येक उत्तरदायी और समझदार व्यक्ति ऋषि के उपरोक्त शब्दों को पढ़ कर मनन करेगा। ऋषि ने ये शब्द लिखकर महाराज कृष्णजी की लुटती लाज बचाने का सफल प्रयास किया है। श्रीराम और श्रीकृष्ण के नाम पर भेदभाव की दीवारों में ऋषि ने अपने तर्क के गोले बरसा कर दराड़े ही पैदा नहीं की अपितु वे दीवारें भूमि पर बिछाकर रख दी हैं। आर्य लोग कृष्ण जन्माष्टमी भी मनाते हैं और राम नवमी भी। हम बारह व सोलह का मूर्खतापूर्ण भेद नहीं मानते। ऋषि का ऐक्यवाद हमें यह भेदभाव नहीं सिखाता। यह अनुपम विचार देकर ऋषि ने एकता की शक्तियों को अनुप्राणित किया है।

भगवान के भेजे हुए

वेद का सिद्धान्त है 'पक्तारं पक्व : पुनरा विशाति ।' मनुष्य जैसा पकाता है वैसा खाता है । वेद की विश्व को एक महान् देन कर्मफल सिद्धान्त है । यह कर्मफल सिद्धान्त, विश्व-शान्ति की, आचार शास्त्र की जान है। बिना कर्म किए फल की इच्छा करना या कुछ प्राप्त करना भ्रष्टाचार है । यह शोषण है । कर्म करके उसके फल से बचने का प्रयास करना यह भी अनैतिकता है । सृष्टि-नियम इसके विपरीत है । सृष्टि का नियम जड़ वा चेतन सब पर लागू है । जिसे जड़ जगत में कार्य-कारण सिद्धान्त कहा जाता है उसे चेतन जगत में कर्मफल सिद्धान्त कहते हैं । इस नियम में अपवाद का प्रश्न ही नहीं उठता ।

मत-मतान्तरों ने मनुष्य का नैतिक स्तर गिरा दिया है । मनुष्य आज न्याय , भ्रातृत्व, समानता व स्वतन्त्रता की दुहाई तो अधिक देता है, परन्तु आचरण इसके सर्वथा विपरीत करता है। बिना कर्म किए सट्टे व लाटरी से धनी बनने की कुभावना बढती जा रही है। छात्र पाठ्य पुस्तकें न पढ़कर कुंजी अथवा गाइड बुक पढ़कर परीक्षा उत्तीर्ण करना चाहता है। यम नियम का पालन किए बिना व्यक्ति मोक्ष पाना चाहता है। मत मतातंरों ने मुक्ति इतनी सस्ती करदी है कि आज सत्य, सेवा, संयम, स्वाध्याय, आत्मचिन्तन का महत्व समाप्त हो गया है । कोई कैसा भी क्यों न हो, एक क्षण में 'गुरु महाराज' ईश्वर के दर्शन करा देते हैं । दिवंगत वेदज्ञ स्वामी श्री समर्पणानन्द जी महाराज के शब्दों में धर्म में भी Short Cut की प्रवृत्ति घुस गई है । आज इस Short Cut के युग में बिना आत्मचिन्तन के, बिना चरित्र-निर्माण के, बिना जीवन शुद्धि के मोक्ष प्राप्ति की बढ़ रही इच्छा के परिणामस्वरूप नित नये एवं नूतन पंथ बन रहे हैं ।

इन नित नूतन पंथों के कारण मनुष्यों में विघटन व अनेकता की भावना भी बढ़ती जा रही है। अनेकता क्यों बढ़ रही है? इसका उत्तर देने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि मत वा पंथ कैसे बढ़ रहे हैं। जो व्यक्ति नया सम्प्रदाय बनाता है वह यही घोषणा करता है कि वह ईश्वर की ओर से भेजा गया है। वह ईश्वर के दर्शन करा सकता है। यह विचारधारा एकता की घातक है। मानव की उन्नत्ति में बाधक है, साधक नहीं। महर्षि दयानन्द का यह मत है कि किसी व्यक्ति-विशेष को परमात्मा नहीं भेजता। सभी जीव ईश्वर की व्यवस्था के अधीन जन्म लेते हैं। जीव और ईश्वर का सम्बन्ध पिता-पुत्र का और व्याप्य-व्यापक का सम्बन्ध है। हम सब ईश्वर की सन्तान हैं। कोई व्यक्ति-विशेष यदि अपने को ईश्वर का भेजा या उसका पुत्र कहता है तो यह दम्भ है। महर्षि धार्मिक जगत् में भी जागीरदारी या सामन्तवाद नहीं मानते। महर्षि मनुष्य व भगवान् के मध्य किसी आढ़ती या दलाल के अस्तित्व को नहीं मानते। मनुष्य का ईश्वर से पिता-पुत्र सम्बन्ध है अतः बीच में किसी वकील या आढ़ती की आवश्यकता नहीं। इन्हीं बीच वालों ने मानवों में भेद-भाव की दीवारें खड़ी कर दी है। इन गुरुओं ने या बीच वालों ने अपनी महिमा बढ़ाने केलिए कई प्रकार के मिथ्या विचार हमारे देश में फैला रखे हैं। कोई कहता है :—

शाह बिना पत नहीं। गुरु बिना गत नहीं।।

एक श्रीमान जी ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि गुरु और गोविन्द दोनों खड़े हैं किसके पांव पड़ू ?

कविता पद में स्वयं ही कहता है :—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपणे गोविन्द दियो मिलाय।।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने बड़ी सबल युक्तियों से यह वैदिक सिद्धांत हमारे सामने रखा कि महापुरुष पथ-प्रदर्शक होते हैं। वे सुधार, उद्धार व उपकार केलिए अपना जन्म व जीवन जुटाते हैं। उनका कार्य आत्म-स्तुति या आत्म-प्रदर्शनी नहीं। यदि मानव समाज यह सूक्ष्म परन्तु सरल आध्यात्मिक रहस्य समझ ले तो आज ही घृणा, द्वेष व फूट की

अनगिनत दीवारें धरती पर बिछ जाएं। इस युग के महान् दार्शनिक श्रद्धेय श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने अपनी विख्यात पुस्तक VedicCulture में लिखा है:—When teachers came to claim for themselves the title of God's agent or mediator, people began to worship them as God's vicegerent, thus, attributing to God all the weaknesses of a human monarch of limited knowledge and limited capacity. They forget a very simple thing, that when God is in my heart, what is the need of my seeking another agent or mediator ? Man's culture has suffered a good deal at the hands of such superstitions. People have grouped themselves under the banners of different teachers, giving rise to numerous types of jealousies and animosties. They say that they belong to different classes because their teachers are different. They forget that God is one and therefore they are one. Much of the bitterness which we find in religious circles is due not to God or His worship but to the mediators, prophets, agents, priests and the like who pretend to have monopolised the benefits of spirituality for themselves or for their followers"

यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि आर्यसमाज ऋषि मुनियों का जो इतना सम्मान करता है तो उनमें तथा अन्य मत मतान्तरों की सृष्टि करने वालों में क्या अंतर है। इस प्रश्न का उत्तर दिवंगत पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय की ज्ञान प्रसूता लेखनी ने निम्नलिखित शब्दों में दिया है:—आर्यसमाज के ऋषियों की मान्यता अन्यथा है। वह ईश्वर के नियमों को परिवर्तनशील नहीं मानते। वेदवाणी में भी कोई परिवर्तन नहीं मानते। मुल्हिमों (देव-दूत) के बार-बार होने की आशा भी नहीं करते, न दावा करते हैं। जो ऋषि हो चुके हैं या होंगे वह वेदों के जानने वाले और अनुसरण करने वाले होंगे। वह न तो किसी के कानून मंसूख करेंगे और न किसी मुल्हिम की संधि को रद्द करेंगे। विद्या और अविद्या दोनों अपने-अपने स्थान पर आते और

जाते रहेंगे। किसी ऋषि ने कोई नया वर्ष नहीं चलाया न किसी अवतार ने अवतार होने का दावा किया।" —इस्लाम और आर्य समाज, पृ० १५६

आपने फिर आगे लिखा है, "मनुष्य-पूजा मूर्त्ति-पूजा है। यह नक्षत्र पूजा के समान निन्दनीय है और आर्यसमाज इसके विरुद्ध है। जितनी मूर्ति-पूजाएँ हैं वह मनुष्य-पूजा का परिणाम हैं और जितनी नक्षत्र-पूजा है वह भी मनुष्य-पूजा से सम्बन्ध रखती हैं। जैसे कहते हैं कि आसमान में जो तारा 'अगस्त' चमकता है वह 'ऋषि अगस्त' है जो मृत्यु के उपरान्त तारा बन गये। इसी प्रकार दूसरे देशों के पुराणों में भी कहानियाँ मिलेंगी।"

—इस्लाम और आर्यसमाज, पृ० १५७

महर्षि दयानन्द के यशस्वी शिष्य आचार्य चमूपति जी ने वैदिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए अपने एक उर्दू ग्रंथ में लिखा है, ईश्वर के नियम अटूट हैं। सृष्टि के नियम ईश्वर की आज्ञा हैं। इन नियमों का उल्लंघन यदि परमात्मा भी करे तो ऐसा करके वह अपनी सत्ता का निषेध करेगा। ऐसा असम्भव है। ईश्वर के प्यारे वे हैं जिनका जीवन इन भौतिक व आध्यात्मिक नियमों के साँचे में ढल जाता है। जिनका चरित्र ही उनका बड़प्पन है। वे नियम भंग नहीं करते।

इसके ज्ञान का (नियमों के ज्ञान का) संसार में प्रकाश व प्रसार करते हैं। उनकी निष्ठा बुद्धि के साथ सुस्वर होकर उस धर्म का प्रकाश करती है जिसका पवित्र नाम वेद है।

मनीषी लेखक पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'इस्लाम के दीपक' में एक दार्शनिक बात बड़े सरल शब्दों में लिखी है जो लोग बार-बार 'भगवान् के भेजे हुए', 'भगवान् के भेजे हुए' की रट लगाते हैं उनको श्रद्धेय उपाध्याय जी के इन शब्दों पर निष्पक्ष रूप से विचार करना चाहिए :—

"यदि भगवान् मानवीय कार्यों में हस्ताक्षेप करने लगता तो वह देवदूतों (पैगम्बरों) के प्रथम वर्ष में ही उनको इतनी शक्ति प्रदान कर देता कि वे एकदम अधर्म (कुफ्र) को समाप्त कर देते। जो चींटी को बनाने की क्षमता रखता है वह सिंह के बनाने में भी सक्षम है, परन्तु भगवान् का नियम ऐसा है कि मनुष्य को अपने कर्म करने में स्वतन्त्र छोड़ दे। मानवीय इतिहास हमको यही बताता है।"

नरक और स्वर्ग

दयानन्द महान् ने भेदभाव की एक और कृत्रिम दीवार गिरा दी। महर्षि से पूर्व कई लोगों ने यह घोषणाएं कीं थीं कि जो उनको मानेगा वह स्वर्ग में जाएगा और जो नहीं मानेगा वह नरक में जाएगा। महर्षि ने इस निराधार धारणा का घोर खण्डन किया कि अमुक को न मानने वाला नारकीय, दण्डनीय अथवा अधर्मी होगा। इस कुविचार पर वार और प्रहार करते हुए आचार्य दयानन्द ने घृणा द्वेष पर आधारित एक भेदभाव को समाप्त करने केलिए आवाज उठाकर कहा कि कोई व्यक्ति-विशेष ईश्वर पुत्र नहीं। सब उसी परम देव की सन्तान हैं। महर्षि मानव जाति को वैसे भी एक ही मानते हैं। Racial Distinction के विरुद्ध आवाज तो कई राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ लगाते हैं परन्तु विश्वास सभी का यही है कि संसार में कई Races (नसलें) हैं। संस्कृत भाषा में तो Race केलिए कोई शब्द ही नहीं। कारण यह कि वैदिक धर्म केलिए यह विचार अमान्य है। महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ की भूमिका में लिखा है, "**क्योंकि एक मनुष्य जाति में बहका कर, विरुद्ध बुद्धि कराके, एक दूसरे को शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहि: है।**"

—सत्यार्थ प्रकाश, भूमिका

मनुष्य जाति को एक करने की बातें कहना और बात है और मनुष्य जाति को एक जाति मानना दूसरी बात है। Race शब्द का अनुवाद जाति नहीं। महर्षि का मानव जाति की एकता में सिद्धान्त रूप में ही अडिग

विश्वास था। यह उनके उपरोक्त शब्दों से स्पष्ट है। जहां और मिथ्या विचारों ने यह एकता नष्ट की, वहां नरक-स्वर्ग के विचारों ने भी एक नया भेद खड़ा कर दिया। महर्षि का मन्तव्य तो यह है कि कोई क्या मानता है इससे भी अधिक महत्त्व इस बात का है कि कोई क्या करता है। विचार यदि व्यवहार का रूप धारण नहीं करते तो निरर्थक हैं। विचारों का मूल्य तभी है यदि वे आचार के रंग में रंगे जाएं। इस प्रकार महर्षि ने आचार और व्यवहार पर बड़ा बल दिया है।

हमारे मान्य मित्र भारतीय स्वाधीनता संग्राम के योद्धा दिवंगत श्री अशोक कुमार जी आर्य (महाराष्ट्र) कहा करते थे कि अनेक सुधारकों एवं विचारकों ने विचार-शुद्धि की तो केवल चर्चा की है परन्तु दयानन्द जी ने व्यवहार को इतना महत्त्व दिया है कि सत्यार्थ प्रकाश में व्यवहार पर बल देकर भी उन्होंने व्यवहार-भानु नाम की एक पृथक पुस्तिका भी लिखी। ऋषि में और एक साधारण सुधारक में हम यही भेद पाते हैं कि ऋषि मूल की भूल का सुधार करने का प्रयास किया करते हैं।

ऋषि ने लिखा है :—"अब कहिए किसकी बात सच्ची मानी जाये? अपने-अपने वचन से दोनों स्वर्गगामी और दूसरे के मत से दोनों नरकगामी होते हैं इसलिए इन सबका झगड़ा झूठा है किन्तु जो धार्मिक हैं वे सुख और जो पापी हैं वे सब मतों में दुःख पावेंगे।"

—सत्यार्थ प्रकाश चतुर्दशसमुल्लासः

धरती के प्रत्येक न्यायप्रिय व्यक्ति को, जिसे सदाचार प्यारा है और जिसे कदाचार से स्वाभाविक घृणा है, बारम्बार ऋषि के उपरोक्त वाक्य पढ़ने चाहिए। दयानन्द देव वेदों का उजाला लेकर आए थे। वह खिस्त मत वालों को अथवा मुसलमान को, वैष्णव या शैव किसी को भी नारकीय नहीं मानते। वेद का भगवान् न्यायकारी है। वह प्रत्येक कुकर्मी को चाहे वह वेद को ही क्यों न मानता हो यदि वह ईश्वर की आज्ञा के विपरीत आचरण करता है, दण्ड देगा।

प्रायः सभी लोग यह मानते चले आए हैं कि अमुक महापुरुष पर विश्वास लाने से, उसके समर्थन से वे पाप के दण्ड से मुक्त हो जाएंगे। कुछ यह भी

मानते चले आए हैं कि प्रार्थना एवं पूजा से उनके कुकर्मों का दण्ड ईश्वर क्षमा कर देगा। ऋषि दयानन्द ने शताब्दियों से चले आए इस विचार का खण्डन किया है। आपने लिखा है :—

"जीव अपने कर्मों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र।"

—स्वमन्तव्य प्रकाश:

पाठक ध्यान से महर्षि का यह वाक्य पढ़ें। ऋषि ने कर्मफल भोगने में ईश्वर के अधीन नहीं लिखा जैसा कि लोग प्राय: कह देते हैं। ऐसा समझना और सोचना महाभयंकर भूल है। देव दयानन्द का वाक्य 'व्यवस्था' शब्द के बिना बेजान है। 'व्यवस्था के अधीन' यह एक सारगभित सिद्धान्त है। यह वेदों वाले दयानन्द के ऋषित्व का एक ज्वलन्त प्रमाण है। यह एक मौलिक सूझ है। यह संसार पर ऋषि का एक महान् उपकार है। युग-युगों से चले आ रहे नरक व स्वर्ग के, पाप क्षमा करने के निराधार विचारों के विरुद्ध विद्रोह करके स्वामी दयानन्दजी महाराज ने मानव को ऐक्यवाद का मार्ग दिखाया है।

ऋषि दयानन्दजी महाराज के विचारों ने संसार में एक क्रान्ति पैदा की है। इस क्रान्ति का यह प्रत्यक्ष फल है कि इस्लाम व अन्य मतों के अनेक विद्वान स्वर्ग-नरक के मिथ्या विचार का परित्याग कर चुके हैं। ऋषि ने स्वर्ग व नरक नाम का कोई स्थान-विशेष (Region) नहीं माना। सुख विशेष का नाम स्वर्ग व दु:ख विशेष का नाम नरक माना है। मुसलमानों का सम्प्रदाय अहले कुरान भी स्वर्ग (जन्नत के बाग) के उद्यान का अर्थ विश्व-वाटिका मानता है। यह सम्प्रदाय शिफायित (सिफारिश) के इस्लामी मन्तव्य में भी अविश्वास रखता है। यह 'शिफायित' के जो अर्थ लेते हैं वह सत्यार्थ प्रकाश: की ठण्डी छाया का सुखद प्रभाव है। एक अन्य इस्लामी विद्वान डा० गुलाम जैलानी बर्क भी अपनी पुस्तक 'दो कुरान' में इस 'शिफायित' की धारणा का प्रतिवाद कठोर शब्दों में करते हैं।

परन्तु पाठक यह मत भूले कि सत्य धर्म के प्रकाश करने वाले दयानन्द यतिव्रती को इन रूढ़ियों व पाखण्डों का विरोध करने का भारी मूल्य चुकाना

पड़ा। प्राणोत्सर्ग भी करना पड़ा। मुसलमानों का प्रचलित मत यही है कि स्वर्ग में भोग-विलास केलिए सुन्दरियां (हूरें) मिलेंगी। जब ऋषि ने इस विचार को तर्क की कसौटी पर कसा तो लोगों को बुरा लगा। मुसलमान विद्वान मौलवी सना उला साहेब ने अपनी पुस्तक 'हक प्रकाश' में लिखा :—

"जो कई स्त्रियों से भोग की शक्ति न रखता होगा, उसकी कई स्त्रियां न मिलेंगी अपितु यदि किसी को एक स्त्री से भी आपकी भांति (ऋषि दयानन्द) के कष्ट पहुंचेगा तो एक भी न मिलेगी।" (पृ० १९७—१९८)

हमें मौलवी साहब की उपरोक्त पंक्तियों के बारे कुछ नहीं कहना। यह तो केवल एक मनोवृत्ति का दिग्दर्शन कराने केलिए एक उदाहरण रखा है।

इस युग के महान् दार्शनिक श्रद्धेय श्री पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय ने मुस्लिम सम्प्रदायवाद की सृष्टि के प्रमुख स्रष्टा सर सय्यद अहमद खां के ये प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण विचार अपनी पुस्तक 'इस्लाम के दीपक' में उद्धृत किये हैं। पाठक बारम्बार इन वाक्यों को पढ़ेंगे तो उनको यह कहना पड़ेगा कि महर्षि दयानन्द जी महाराज ने वेद-ज्योति से इस्लाम को भी आलोकित किया है। विचारशील मुसलमान भी कपोल कल्पित धारणाओं से मुक्त होने केलिए छटपटा रहे हैं। सर सय्यद अहमद खाँ लिखते हैं :—"बस, यदि बहिश्त की हकीकत यही बाग और नहरें और मोती के और चांदी-सोने की ईंटों के मकान और दूध व शराब और शहद के समुद्र और लज़ीज़ मेवे और खूबसूरत औरतें और लौंडे हों तो यह तो कुरान की आयतों और खुदा के वचनों के बिल्कुल विरुद्ध है।"

एक मुसलमान कवि ने लिखा है :—

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के बहलाने को गालिब यह ख्याल अच्छा है॥

स्वर्ग और नरक के कल्पित भय के भूत ने मानव-जाति में भेदभाव की भावना भी उत्पन्न की और मनुष्य को नैतिक दृष्टि से भी पतनोन्मुख किया। श्रद्धेय पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने इस्लाम के दीपक में इसी प्रसंग में बड़े धार्मिक शब्दों में लिखा है :—**"हमको याद रखना चाहिए कि झूठ या कल्पना की नींव पर**

सदाचार और अध्यात्म का भवन खड़ा नहीं किया जा सकता। और यदि खड़ा किया जायेगा तो अति शीघ्र भयावह सिद्ध होगा।"

एक अमरीकी द्वारा लिखी गई एक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद 'आधुनिक अमरीका में धर्म का स्वरूप' में लिखा है कि वहां पदारियों और पादरी विद्यार्थियों का भारी बहुमत स्वर्ग और नरक को विशेष स्थान (Region) के रूप में नहीं मानता। यही वैदिक दृष्टिकोण है।

शास्त्रों में ऐक्यवाद

महर्षि दयानन्दजी से पूर्व भारत में एक और भ्रान्ति फैली हुई थी। किसी ने यह कह दिया कि छह शास्त्रों में परस्पर विरोध है। किसी ने यह कह दिया कि महाराज कपिल नास्तिक थे। कोई जैमिनि मुनि महाराज को नास्तिक बता रहा था। सर्वत्र यही बताया जाने लगा कि भारत के षड्दर्शन परस्पर विरोधी हैं। किसी दर्शन का दूसरे दर्शन से मेल नहीं। भारतीय क्या और अभारतीय क्या, सब यही रट लगा रहे थे कि आर्य ऋषियों में दार्शनिक मतैक्य नहीं था।

अंग्रेज बड़ा कूटनीतिज्ञ है। अपने राजनैतिक स्वार्थों के कारण आर्य जाति में फूट पैदा करने और विश्व-कल्याण करने वाली वैदिक विचारधारा पर कुठाराघात करने केलिए अंग्रेज ने चतुराई से छह आर्य दर्शनों को Six Arya Shastras या Six Shastras कहने की बजाय Six Schools of Hindu Thoughts कहना आरम्भ कर दिया। हिन्दुओं की छह दार्शनिक धारायें कहकर अंग्रेज ने फूट का एक सूक्ष्म संस्कार पढ़े-लिखे लोगों के दिमाग में घुसेड़ दिया। किसी भी भारतीय सुधारक व विचारक ने इसका विरोध नहीं किया। श्री राजा राममोहन राय, ठाकुर रवीन्द्रनाथ, श्री स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक आदि भारतीय विद्वान बड़े देश-भक्त और योग्य मनीषी थे, परन्तु दुर्भाग्य से इनमें से किसी ने भी अंग्रेज के इस विषैले प्रचार का विरोध न किया।

लोकमान्य तिलक ने तो स्पष्ट ही अपने 'गीता रहस्य' में सांख्य व वैशे आदि दर्शनों को परस्पर विरोधी माना है। लोकमान्य जी के शब्द हैं : **"परन्तु पश्चिमी देशों में प्रसिद्ध सृष्टिशास्त्रज्ञ डार्विन के उत्क्रान्तिवाद ने** **प्रकार डाल्टन के प्रमाणु-वाद की जड़ ही उखाड़ दी है, उसी प्रकार ह देश में भी प्राचीन समय में सांख्य-मत ने कणाद के मत की बुनियाद (नीं हिला डाली थी।"** (गीता रहस्य, हिन्दी संस्करण, सन् १९२६ पृ० १५ **"परन्तु स्मरण रहे कि सांख्य और वेदान्त के अन्तिम सिद्धान्त, एक दूसरे बहुत भिन्न हैं।"** (गीता रहस्य पृ० १४

स्वामी शंकराचार्य ने वेदान्त का भाष्य किया है। अपने वेदान्त के भा में आपने शेष पांच दर्शनों का खण्डन ही नहीं किया अपितु इन दर्शनों आचार्यों केलिए अन्य शब्दों का भी प्रयोग किया है। आगे चलकर शंकराच जी के शिष्यों ने और भी कठोर शब्दों में शेष शास्त्रों की आलोचना की शंकराचार्य जी के विरोधियों ने वेदान्त की आलोचना की। इस प्रक आर्य जाति में भेदभाव बढ़ता ही गया। समन्वय की किसी को सू ही नहीं। **"इस बात ने हिन्दू धर्म के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बहुत लोग जिन्होंने न्याय दर्शन का अध्ययन किया नास्तिक हो गये। और बहुत जिन्होंने वेदान्त दर्शन का मनन किया, वेद शास्त्रों को भी अविद्या अ अविद्यामूलक मानने लगे।"**

(भारतीय पतन और उत्थान की कहानी, पृ० १३

१९६५ की बात है। मैं शोलापुर के दयानन्द कालेज की बी०ए० द्विती वर्ष की प्राचीन भारतीय संस्कृति की कक्षाओं के छात्रों को भारतीय दर्शन प रहा था। पढ़ाते समय यही प्रसंग आ गया कि छहों दर्शन परस्पर विरो हैं। मैंने छात्रों को कहा कि छहों दर्शनकार वैदिक दर्शन कहलाते हैं। छ दर्शन वेद को परम प्रमाण अथवा स्वतः प्रमाण मानते हैं। छहों दर्शन वे को अपौरुषेय मानते हैं। जब छहों दर्शन वेद को प्रमाण मानते हैं फि परस्पर विरोध कैसा? फिर उन्हें हिन्दू दर्शन के छह सम्प्रदाय क कहा जाये? जब वेद को अपौरुषेय मानने में कपिल व जैमिनि ऋषि भ किसी से पीछे नहीं फिर महाराज कपिल व जैमिनि नास्तिक कैसे?

कक्षा में अलापुरे नाम के एक समझदार छात्र बोले, "आपकी बात तो बड़ी युक्तियुक्त है परन्तु पुस्तकों में तो सब यही कहते हैं कि छहों दर्शन परस्पर विरोधी हैं।" मैंने कहा आपको कौनसी बात जंचती है? उसने कहा, 'आपकी।" तब मैंने कहा, मुद्रित पृष्ठों की दासता छोड़ो, बुद्धि से और विवेक से काम लो और देव दयानन्द का गुणगान करो जिसने यह सूझ दी। मैंने छात्रों को तब An Introduction to Indian Philosophy by Dr. Satish Chander Chatterjee, M.A., Ph.D. and Dr. Dhirendra Mohan Datta, M.A., Ph.D. का प्रमाण भी दिया। इन विद्वानों ने उक्त पुस्तक में इतना तो माना है कि कपिल मुनि को कई विद्वान ईश्वरवादी मानते हैं।

Philosophy of Dayanand के यशस्वी लेखक श्री पं० गंगाप्रसादजी उपाध्याय ने Yogi Ram Charaka of Masonic Temple, Chicago (U. S. A.) की एक पुस्तक के इस विषय में कई उद्धरण दिये हैं। योगी महोदय ने कपिल मुनि के आस्तिक होने के सम्बन्ध में लिखा है :—

"In the first place there is nothing in the teaching of Kapila or his early followers, in which the existence of that is denied or condemned—there is simply a silence regarding it, just as in the case of Budhism, and the cause is the same in both cases."

अर्थात् पहले तो कपिल अथवा उसके पहले अनुयायियों की शिक्षा में ऐसी बात नहीं जिसमें ईश्वर के अस्तित्व का निषेध हो या उसका खण्डन हो। केवल इतनी सी बात है कि दूसरे सम्बन्ध में कौन है जैसे कि बुद्धमत में और दोनों अवस्थाओं में बात एक सी है।

इससे यह तो स्पष्ट हो गया कि महर्षि दयानन्द की सबल-प्रबल मौलिक युक्तियों से बड़े-बड़े विचारकों के विचारों में क्रान्ति हुई है। ऋषि ने दम्भ दुर्ग पर वार करके असत्य के पांव उखाड़ दिये हैं। योग राम चरक के उपरोक्त विचारों की विवेचना करते हुए उपाध्याय जी ने ठीक ही लिखा है कि "Swami Dayanand does not say that Kapila is silent about

the supreme Being.—Kapila does mention the over soul, as Swami Dayanand has pointed out by specifically quoting sankhya Sutras (III, 56, 57 and V. 8)".

(Philosophy of Dayanand Paragraph. 486)

स्वामी दयानन्द यह नहीं मानते कि कपिल ईश्वर के विषय में मौन हैं—कपिल ने ईश्वर की चर्चा की है जैसा कि स्वामी दयानन्द ने सांख्य सूत्रों का (तीन, ५३, ५७ तथा पांच, ८) विशेष रूप से उल्लेख किया है।

षड्दर्शन समन्वय की चर्चा करते हुए डा० सत्यप्रकाश जी (पूज्य उपाध्याय जी के ज्येष्ठ सुपुत्र) ने अपनी पुस्तक A Critical study of Philosophy of Dayanand में भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् के एक ग्रंथ का एक उद्धरण इस प्रकार दिया हैं—

"The six system agree on certain essentials. The acceptance of the veda implies that all the systems have drawn from a Common reservoir of thought." अर्थात् छह दर्शन कुछ आधारभूत बातों पर एकमत हैं। वेदों को मान्यता (स्वत: प्रमाण) का अर्थ यह है कि छहों दर्शनों का ज्ञान का स्रोत एक ही है।

इन पंक्तियों पर किसी टिप्पणी की कुछ भी आवश्यकता नहीं, फिर भी पाठक 'Essentials' आधारभूत को विशेष रूप से बार-बार पढ़ें और 'Common reservoir of thought' 'ज्ञान का एक ही स्रोत—वेद' इस पर गम्भीर विचार करें। डा० राधाकृष्णन् आदि के ये शब्द पढ़कर आर्य कवि प्रो० 'शरर' जी के एक गीत के निम्न पद अनायास मुख से निकल आते हैं :—

कोई ज़ुबाँ पर लाए न लाए। महर्षि महिमा गाए न गाए ॥
दिल से मगर सब मान चुके हैं योगी ने जो उपकार कमाए ॥

योगी राम चरक हो अथवा डा० राधाकृष्णन्, सभी स्वामी दयानन्द से लाभान्वित हुए हैं। मानना पड़ेगा कि आज इनके कण्ठ से स्वर दयानन्द क्रान्तदर्शी के निकल रहे हैं। स्वामी दयानन्द की सूझ का भी कोई क्या मूल्यांकन करेगा ? आचार्य गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखते हैं :—

"स्वामी दयानन्द अपने युग के सबसे बड़े सुधारक हैं जिन्होंने दर्शनकारों के मतैक्य को सिद्ध करके स्पष्ट कर दिया है। दर्शनकार एक हो जायें तो सर्वसाधारण का पारस्परिक विरोध और द्वेष दूर हो सकता है, विरोधियों को समझा कर मित्र बना देना सबसे बड़ा सुधार है और महर्षि दयानन्द इस सुधार के सबसे बड़े प्रवर्तक हैं।"

(भारतीय पतन और उत्थान की कहानी, पृ० १३७)

ऋषियों की आवाज यही है

वेद अनादि ज्ञान धर्म हमारा है
उत्तम शिक्षा यह कल्याणी।
यह प्रीतम की प्यारी वाणी॥
नित्य ज्ञान की खान धर्म हमारा है—
भेदभाव को दूर भगाता।
मानवता का पाठ पढ़ाता॥
मुक्ति का सोपान धर्म हमारा है—
लोक और परलोक सुधारे।
जन-जन में सद्भाव उभारे॥
दुर्जन बनें सुजान धर्म हमारा है—
दयानन्द का नाद यही है।
ऋषियों की आवाज यही है॥
पीड़ित पावें त्राण धर्म हमारा है—
हंसराज आदेश यही है।
श्रद्धानन्द उपदेश यही है॥
लेखराम की जान धर्म हमारा है—
धरा धाम से पाप मिटावें।
दुखियों के सन्ताप मिटावें॥
गूंजे सकल जहान धर्म हमारा है—

धर्म की कसौटी

ऐक्यवादी दयानन्द की एक और मौलिक देन है। महर्षि दयानन्द से पूर्व हिन्दुओं में विचारों की अराजकता फैली हुई थी। कोई शिव को मानता था तो कोई विष्णु को, कोई राम का पुजारी था तो कोई कृष्ण का, कोई दुर्गा का तो कोई काली का, कोई वेदान्त को मानता था तो कोई मीमांसा को, किसी का मान्य ग्रंथ गीता थी तो किसी का भागवत् पुराण, कोई रामचरित मानस को सर्वस्व मानता था तो कोई ज्ञानेश्वरी को, कोई मीरा के गीतों में मोक्ष की खोज कर रहा था तो कोई सदने कसाई का अनुयायी। क्या लिखें क्या था और क्या नहीं था। आज भी हिन्दुओं में यही कुछ है। भेद केवल यह है कि आज महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना करके आर्य सन्तान को धर्म की कसौटी दे दी है। साधारण हिन्दू समाज तो क्या सुशिक्षित पौराणिक भी धर्म-अधर्म की कोई कसौटी नहीं रखता।

सन्त तुलसीदास जी ने लिखा है :—

पूजिए विप्रशील गुण हीना।
शूद्र न गुण गण ज्ञान प्रवीणा॥

परन्तु पावमानी कल्याणी वेद वाणी का आदेश है :—

यः पोता स पनातु मा। (यजु० १६.३६)

जो पवित्र हैं वह मुझे पवित्र करें।

वेद फिर कहता है :—

पवित्रवन्तः परि वाचमासते। (ऋ० ६.७३.३)

अर्थात् पवित्रता के इच्छुक वेद का अध्ययन करें । वेदवाणी का घोष है :—

जागृवांसः समिन्धते । (ऋ० ३. १०.६)

अर्थात् जागरूक ही प्रकाश करते हैं ।

वेद में तो मानव-जाति में भेद ही कर्म के आधार पर माना गया है । विद्वान यदि दुष्ट है तो वेद उसे भी दस्यु ही मानता है । आचार, अनाचार में से वेद आचार को प्रमुखता देता है । अनाचार को दूर करने केलिए ही तो वेद ज्ञान का प्रकाश हुआ ।

वेदवाणी और तुलसी जी के वचनों में विरोध स्पष्ट है । [illegible]
[illegible]
सुन्दर शब्दों में इसी वैदिक सिद्धान्त का प्रकाश करते हुए कहा है :—

अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि ।
शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ।। (अ० १२.२.२८)

अर्थात् दुराचार को, अति को पार करते हुए सब वीर लोग सौ वर्ष तक सुख से सुमुदित जीवन व्यतीत करें ।

वेदादेश है 'स्वस्ति पन्थाम अनु चरेम .....जानता सं० गमेमहि ।।
(ऋ० ५.५१.१५)

अर्थात् सूर्य व चन्द्र के समान हम कल्याणकारी कर्त्तव्य मार्ग के पथिक हों । हम ज्ञानियों, दानियों के संग, भले पुरुषों के साथ रहें ।

'परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा । (यजु ४.२८) में दुर्जनों से बचने व सदाचारियों के सत्संग की बात कही गई है ।

वेद बड़े सरस शब्दों में कहता है ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः । (ऋ० ६.७३.६) अर्थात् कुकर्मी धर्म मार्ग, कल्याण पथ पर नहीं चलता । उसका क्या कल्याण होगा ? ये सब वेद वचन तुलसी जी के मत का प्रतिवाद करते हैं ।

यदि किसी हिन्दू से पूछा जाए कि तुलसी और वेद, दोनों में से किस की बात मानें ? दोनों में से धर्म क्या है ? तो पौराणिक हिन्दू के पास इसके सिवा कोई उत्तर नहीं कि वह मुख में दही जमाकर चुप हो जाए । एक आर्य झट कहेगा कि जो वेद में है सो धर्म है, जो वेद-विरुद्ध है सो अधर्म है, अतः त्याज्य और निन्दनीय है ।

तुलसी जी नारी के बारे में लिखते हैं :—

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी । सकल ताड़ना के अधिकारी ।

फिर तुलसी जी का ही वचन है, अधम से अधम अति नारी । (अरण्य-काण्ड) कुछ लोग महर्षि दयानन्द के तर्क व उपकार से लाभान्वित होकर भी भूल को भूल नहीं मानते । उनका कथन है कि यहां गँवार व पसु विशेषण हैं । हमारा निवेदन है कि गँवार सूद्र व पसु नारी ही ताड़ना के अधिकारी क्यों ? गँवार, ब्राह्मण व पसु पुरुष क्यों छोड़े गये ? तुलसी को इनका ध्यान न आया :—

मनु महाराज कहते हैं :—

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।

जहां नारियों का सत्कार व सम्मान होता है वहां देवता निवास करते हैं । इसके विपरीत श्री शंकराचार्य नारी को नरक का द्वार बताते हैं । प्रश्न यह है दोनों में से धर्म क्या है ? अधर्म क्या है ? पौराणिक हिन्दू कुछ भी उत्तर नहीं दे सकता । हमारा उत्तर सीधा व स्पष्ट है जो वेद अविरुद्ध है, जो वेदानुकूल है सो धर्म । जो वेद-विरुद्ध है सो अधर्म है ।

वैष्णव देवी वाले मांस-भक्षण धर्म-विरुद्ध मानते हैं परन्तु काली के नाम पर नित सैंकड़ों बकरे काटे जाते हैं । धर्म अधर्म की यहां क्या कसौटी है ? पौराणिक हिन्दू उत्तर देने में अक्षम है । कारण सब सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं । सबका अपना-अपना पंथ और अपना-अपना ग्रंथ । सत्य-असत्य के निर्णय की कोई कसौटी नहीं । ऋषि दयानन्द ने आर्य जाति को उपहास से बचाने केलिए अनादि काल से चली आ रही धर्म और अधर्म की, सत्य-असत्य के निर्णय की कसौटी पुन: दे दी और वह है वेद । मीमांसा दर्शन में आता है :—

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'

धर्म का मूल वेद है । धर्म के बारे में सम्पूर्ण कर्त्तव्यों और अकर्त्तव्य की जानकारी वेद ही दे सकता है । इस सत्य को, इस तथ्य को भूलकर हिन्दू समाज में मानसिक अराजकता फैली । कोई योग दर्शन के अनुसार यम नियम का पालन करता हुआ साधना के पथ पर चल रहा है तो कोई केवल तिलक लगा कर अपने आपको धर्मात्मा समझ रहा है । कोई ज्ञान मार्ग की

महिमा गा रहा है तो कोई कर्म मार्ग की । कोई ज्ञान और कर्म दोनों को पीछे लिये फिरता है वह भक्ति मार्गी होने का अभिमान रखता है । ज्ञान, कर्म और भक्ति ने भी हिन्दू को तीन सम्प्रदायों में विभक्त कर दिया । ईश्वर से मिलाप करने निकले और परस्पर फूट का ग्रास बन गये ।

एक गंगा-यमुना में स्नान करके निर्वाण-प्राप्ति का पात्र बन रहा है तो दूसरा धन्ने जाट की कहानी का सहारा लेकर पाषाण-पूजन में ही ईश्वर के साक्षात्कार की दुहाई दे रहा है । एक गीता के कर्मफल सिद्धान्त की दार्शनिक गहराई की दुहाई देकर चरित्र को पवित्र बनाने पर बल दे रहा है तो दूसरा एकादशी, अमावस्या, मंगलवार अथवा किसी अन्य दिन उपवास रखकर अपने को व्रती मानकर पुण्यात्मा या महात्मा समझ रहा है । एक कहता है 'किये का फल अवश्य मिलेगा' तो दूसरा 'प्रायश्चित' की ओट में पाप के फल से बचने की आशा बांधे हुए है । एक के सामने वेद का यह आदेश है :—

स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व
स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ।।

(यजु० २३.१५.)

अर्थात् जीव की महिमा को कोई और नहीं बढ़ा सकता । अपने शुभ कर्म, अपने पुरुषार्थ परमार्थ से मानव की यश-कीर्ति बढ़ती है । इसके विपरीत सेठ लोग क्या और मध्य वर्ग क्या, शिक्षित व अशिक्षित वर्ग के अनेक लोग पैसे देकर पंडितों से, पुजारियों से पूजा-पाठ क्रय करते हैं । पुण्य की पंडित लोग बिक्री करते हैं ।

महर्षि दयानन्द ने हमारी समस्त आशंकाओं को समाप्त कर दिया है । देव दयानन्द के किसी भी सैनिक के सामने किसी भी धार्मिक व सामाजिक कर्त्तव्य का निर्णय करने में कोई उलझन नहीं । ऋषि ने व्यर्थ के विवादों को मिटाकर वेद का ऐक्यवाद देकर मानव-जाति का बड़ा कल्याण किया है । ऋषि के इस महान् उपकार का मूल्याङ्कन करने केलिए पाठकों के सामने एक घटना रखता हूँ । गत वर्ष मेरे एक परिचित व्यक्ति मुझे मिलने आये । वह हिन्दू संस्कृति की बहुत दुहाई देते रहते हैं । मैंने पूछा हमारी संस्कृति क्या है? बोले, प्राचीन भारतीय संस्कृति

हमारी संस्कृति है। मैंने कहा उसके आधारभूत सिद्धान्त क्या हैं ? बोले, हमारी परम्परायें। मैंने पूछा कि परम्परायें क्या हैं ? झट बोले जो स्वामी विवेकानन्द ने कही है। मैंने धृष्टता करते हुए पूछा स्वामी विवेकानन्द जी ने क्या कहा है ? कहने लगे जो हमारी पुरानी परम्परायें हैं। मेरी हंसी छूट गई। मैंने कहा ठीक है। घर कहां, नीम के सामने, नीम कहां, घर के सामने।

महर्षि ने धर्म का यथार्थ स्वरूप हमारे सामने रख कर बड़ा कल्याण किया है। श्रद्धेय उपाध्याय जी के शब्दों में ऋषि का आर्पनाद है :—

"जो वेद में है वही धर्म है, जो धर्म है वही वैदिक है। जो वेदानुकूल नहीं वह धर्म नहीं। धर्म की एक ही कसौटी है। वह यह कि वह वेदों के अनुकूल हो। वेदान्त में तो ब्रह्म को शास्त्र की योनि 'शास्त्र योनित्वात्' माना है।"

सन् १९५९ की बात है। मैं काश्मीर-यात्रा पर गया। पहलगाम में नदी के तीर पर एक मन्दिर है। मन्दिर में जाकर मैंने देखा कि एक 'सन्त बाबा' तम्बाकू पी रहे हैं। मैंने पूछा कि आप धूम्रपान क्यों करते हैं ? उसने कहा कि यहां शीत है, अतः शीत से बचने केलिए तम्बाकू पीता हूँ। मैंने कहा शीत से बचने केलिए बादाम-अखरोट आदि का प्रयोग करें। तम्बाकू पीना अनुचित है। वेद में कहां धूमपान लिखा है ? मेरे मुख से यह वाक्य सुनकर वह बाबा चौंक पड़े और साथ के कमरे में बैठे अपने एक साथी को पुकार कर कहा, "अरे आना एक आर्य समाजी आया है इसे वेद का प्रमाण दो।" उसके ये शब्द आज भी मेरे कानों में गून्ज रहे हैं। धन्य है ऋषि दयानन्द, जिन्होंने हमें वेद के रूप में धर्म की कसौटी देकर हमें व्यर्थ के विवाद से बचा लिया। जब तक हिन्दू वेद को परम धर्म नहीं मानते, धर्म-अधर्म की यह कसौटी नहीं अपनाते तब तक इनका सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक उत्थान सम्भव नहीं। ऋषि दयानन्द निस्तेज हिन्दू में आत्म-तेज पैदा करके समूचे विश्व में मानव-जाति का भला चाहते थे। इसका एक ही मार्ग है। वेदादेश का पालन।



सातवां अध्याय

वेद ही क्यों ?

महर्षि का ऐक्यवाद पुस्तक में वेद की महत्ता या वेद का गौरव-गान करने का तो हमारा विचार न था, परन्तु प्रसंगवश इस महत्त्वपूर्ण विषय पर कुछ लिखना अनिवार्य समझा गया है। महर्षि का सिद्धान्त है कि आदि-सृष्टि में अनादि वेद का प्रकाश हुआ। क्यों ? ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश आदि-सृष्टि में न हो तो मानव की उन्नति और कल्याण सम्भव नहीं। मनुष्य सृष्टि का नियम है Necessity is the mother of Invention अर्थात् आवश्यकता आविष्कार की जननी है। ईश्वरीय सृष्टि का नियम इसके विपरीत है अविष्कार पहले और आवश्यकता बाद में। पृथ्वी पहले बनी, मानव, पशु, पक्षी बाद में। पृथ्वी न होती तो मानव का आवास कहां होता ? मानव को प्यास लगी, जल पहले ही था। भूख लगी, अन्न. फल आदि पूर्व विद्यमान थे। श्वास लेने केलिए वायु भी पहले ही थी। आंख के देखने की आवश्यकता से पूर्व इसकी पूर्ति केलिए सूर्य का आविष्कार हो चुका था।

इसी प्रकार प्रभु ने मनुष्य को बुद्धि दी है। बुद्धि की आवश्यकता है विचार-ज्ञान। विश्व के सब मनोवैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य में कुछ मूलभूत प्रवृत्तियां (Instincts) होती हैं। इनमें से एक है जिज्ञासा (Instinct of curiosity)। यह प्रवृत्तियां कब से हैं ? मनोविज्ञान मानता है कि यह जन्मना (Innate) है। जब से मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ है तब से यह प्रवृत्तियां पैदा हुई हैं। इससे स्पष्ट है कि ज्ञान-प्राप्ति की आवश्यकता मनुष्य को सृष्टि के आदि से रही है। जब यह आवश्यकता सृष्टि के आदि से हुई है तो मानना पड़ेगा कि मनुष्य की उत्पत्ति के समय ही परमात्मा ने, उस वरुण करुण ने, उस सुधा सिंधु ने अपने पवित्र, नित्य वेद ज्ञान का दान मनुष्य को दिया। कुछ लोगों का मत

है कि मनुष्य ने धीरे-धीरे उन्नति करके फिर ज्ञान प्राप्त किया। यह युक्ति अस्वाभाविक है, सारहीन है। जब मनुष्य ने उन्नति करली फिर ज्ञान की आवश्यकता ही क्या रह गई ? मुसलमान बन्धु एक बात कहा करते हैं कि पूर्व कालों में भी ईश्वर ने समय-समय पर अपने चुने हुए दूतों को अपना ज्ञान दिया, परन्तु समय पाकर वह ज्ञान-ग्रंथ या तो नष्ट हो गये या उनमें फेरबदल हो गया। तनिक विचार करने पर पता चलता है कि यह तर्क भी निराधार है। यदि पूर्व के ज्ञान-ग्रंथ परमेश्वर के ही थे तो उनमें फेरबदल कैसे और क्यों हुआ ? मुसलमान भाई कहते हैं कि कुरान के पश्चात् किसी ज्ञान की आवश्यकता नहीं। कुरान की रक्षा का अल्लाह ने स्वयं दायित्व लिया है। इस पर प्रश्न उठता है कि अल्लाह ने अपने पूर्व दिये ज्ञान की रक्षा क्यों न की। यदि पूर्व के ज्ञान की रक्षा वह न कर सका तो अब वह कुरान को बचा सकेगा। इसकी क्या सम्भावना है ? मनुष्य भी वही और अल्लाह भी वही। आचार्य चमूपति जी का प्रश्न है कि समय पाकर किसका स्वभाव बदल गया है ?

कुछ मुसलमानों ने एक नया तर्क दिया है कि जैसे एक श्रेणी के छात्रों को परीक्षा के पश्चात् नई श्रेणी में नई पुस्तकें दी जाती हैं वैसे ही आदि काल के मनुष्य को जिस ज्ञान की आवश्यकता थी अब उसकी उपयोगिता नहीं। मानव प्रगति कर चुका है। यह युक्ति सर्वथा निःराधार है। एक बालक को नई श्रेणी में नई पुस्तक दी जाती है। यह ठीक हैं परन्तु इसलिये दी जाती है क्योंकि बालक वही है जो पिछली श्रेणी में था। वह पूर्व श्रेणी की पुस्तक पढ़ चुका है। यदि मुसलमान आवागमन का सिद्धान्त मान लें तब तो उनकी युक्ति में कुछ सार माना जा सकता है, अन्यथा पं० चमूपति जी के अनुसार इस्लाम का मत है कि प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक पीढ़ी की नई सृष्टि होती रहती है। विभिन्न कक्षाओं में वही छात्र हों ऐसी बात नहीं। जब प्रत्येक मनुष्य का यह जन्म उसका पहला जन्म है तो नये ईश्वरीय ज्ञान की क्या आवश्यकता ? देखा जाए तो पता चलेगा कि ईश्वरीय ज्ञान और उत्क्रान्ति दो परस्पर विरोधी मान्यताएं हैं।

नये-नये मतों की सृष्टि करने वालों ने विश्वैक्य की भव्य भावना को बड़ी क्षति पहुंचाई है। विश्वैक्य की भद्र भावना के प्रसार केलिए ईश्वरवाद में

विश्वास रखने वालों को एक ईश्वरीय विधान—परम पवित्र वेद ज्ञान में विश्वास रखना अनिवार्य है।

ईश्वर में विश्वास रखने वाले सभी लोग मानते हैं और अनीश्वरवादी भी इस में विश्वास रखते हैं कि As you sow so shall you reap अर्थात् जैसा करोगे वैसा भरोगे। यह नियम कब से सृष्टि में लागू है? सीधी सी बात है कि जब से सृष्टि पर मानव की उत्पत्ति हुई है तब से वह भले-बुरे कर्मों का फल भोगता आया है। तनिक विचारिये! प्रत्येक संविधान या नियम लागू होने के पश्चात् उसका उल्लघंन करने वाले को दण्ड दिया जाता है। नियम जब लागू हो उससे पूर्व यदि किसी ने उसके विपरीत कार्य किया हो तो उसे इसके लिए दण्ड नहीं दिया जाएगा। यदि आदि-सृष्टि से ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश न माना जाए तो परमात्मा को अपना विधान या ज्ञान न देने के कारण जीवों को उनके भले अथवा बुरे कर्म का फल देने का क्या अधिकार है? यदि उसने अपना ज्ञान आदि-सृष्टि में नहीं दिया तो न्यायकारी व दयालु कैसे? उसकी दया व न्याय इस बात की मांग करते हैं कि जीवों के दर्शन केलिए एवं भले-बुरे कर्म के फल देने केलिए वह आरम्भ से ही अपने ज्ञान का प्रकाश करे।

महर्षि दयानन्द से पूर्व किसी ने वेद को गडरियों के गीत कहा और किसी ने धूर्त-निशाचरों की रचना कहा। कोई वेद को Primitive Poetry अथवा आदिम काव्य कहकर इसकी अवहेलना कर रहा था तो कोई वेद पर अश्लीलता का व्यर्थ दोषारोपण कर रहा था। ऐसी विषम वेला में बाल ब्रह्मचारी दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ था। मेरे प्रेरणा-पुञ्ज श्रद्धेय उपाध्याय जी ने एक गम्भीर मनोवैज्ञानिक प्रश्न उपस्थित करते हुए लिखा है :—

"ऐसे समय आचार्य दयानन्द ने सहस्रों वर्ष से जमा होते हुए कूड़े-करकट के नीचे से वेदों को निकाल कर ऊपर रख दिया। और कम से कम दो धारणाओं का निराकरण तो कर दिया कि न तो वेद धूर्त और निशाचरों की पुस्तक हैं और न मूढ़ और मूर्ख गडरियों के गीत हैं। आजकल के विदेशी या देशी वेद-प्रेमी इस बात में स्वामी दयानन्द से सहमत हो गये हैं। यह श्रेय आचार्य दयानन्द को प्राप्त हो चुका है। इसमें कोई दो मत नहीं। आचार्य दयानन्द को यह कैसे सूझा कि वर्षों से जमे हुए इस कूड़ा-करकट के

ऊँचे ढेर के नीचे कोई मूल्यवान वस्तु छिपी है जो मानव जाति के विचार की अधिकारिणी है, यह जानना कठिन है। गत् शताब्दी की विद्यमान प्रवृत्तियों और प्रगतियों में कोई भी ऐसी नहीं दिखाई पड़ती जो स्वामी दयानन्द के अन्वेषण में सहायक हो सकती। विपरीत प्रोत्साहन देने केलिए तो सहस्रों विचार-धारायें थीं और उनका देश के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञों पर प्रभाव पड़ा। मेरे लिए यह मनोवैज्ञानिक प्रश्न रहा है और मैं तो यही कहूँगा कि दयानन्द में एक दिव्य ज्योति थी जो इतनी गम्भीर जा सकी।"

(सायण और दयानन्द, पृ० ५-६)

महर्षि दयानन्द ईश्वर और उसके वेद ज्ञान की महिमा का ऐसा प्रकाश किया है कि आज वेद पर यदि कोई प्रहार करता है तो अनेक विद्वान वेद की रक्षा केलिए आगे आकर प्रहारकर्त्ता का मुंह तोड़ उत्तर देते हैं। डा० अविनाशचन्द्र वसु ने अपनी पुस्तक The Call of the Vedas में बड़े सारगर्भित शब्दों में लिखा है :—

"It is usual to describe vedic poetry as primitive. If, by primitive poetry is meant tribal song farther from the fact. No primitive poet ever sang :

Thought was the pillow of her coach, sight was the unguent of her eyes.

(R. X. 85.7)

If we should call Vedic poetry primitive, we should do so with reference to its pristine purity and its freedom from the malaise of the later civilisation."

—The call of the Vedas, Page I

इसका सारांश यह है कि हम वेद-काव्य को आदिम या पूर्वकालीन कहते हैं तो हमें वेद की प्राचीन पवित्रता, शुद्धता, निर्मलता के प्रसंग में और वेदोत्तर संस्कृति की अपवित्रता, मलीनता, विकृति से अलिप्तता के कारण ऐसां कहना चाहिए।

वेद का उपहास उड़ाने वालों को भी ऋग्वेद में गूढ़तम दार्शनिक सिद्धान्तों के दर्शन होते हैं। अमरीका के प्रसिद्ध पत्र Life द्वारा प्रकाशित Life World

rary India 1967 में ऋग्वेद के नासदीय सूक्त की चर्चा करते हुए ा है, "The Rig-Veda reaches its philosophical peak in its culations ab.ut the existence and universal spirit."

अब वह युग गया, जब वेद को आदि काल का काव्य कहकर उपेक्षित ा जा सकता था। जिन पश्चिमी लेखकों ने वेद को ईसा से एक सहस्र पूर्व का माना है उनका भी इस में दोष नहीं। वे लोग ईसाई थे और ाई सरकार के वेतन-भोगी थे। वे निष्पक्ष अनुसंधान कर्त्ता न थे। उनका श्य साम्राज्यवाद व ईसाई मत का प्रचार करना था। ईसाई मत की ्णा है कि सृष्टि की उत्पत्ति ५-६ सहस्र वर्ष पूर्व हुई। जब वे सृष्टि की ्रु पांच छः सहस्र वर्ष मानते हैं तो वेद ज्ञान को लगभग दो अरब वर्ष का मानें ?

एक मुसलमान सेठ ने एक मुसलमान को (मीरासी को) एक पुरानी ड़ी भेंट की और कहा कि इसमें बड़ा ज्ञान है। यह सारा ज्ञान तेरे मस्तिष्क आ जाएगा। मीरासी 'न' तो कर न सका परन्तु उसे यह बात बुरी लगी उसको अत्यन्त फटी पुरानी पगड़ी दी गई है। वह प्रातः काल मस्जिद के हर बैठकर बोलने लगा 'लाइला इल इल्ला' बारबार यही बोलता जाता। सेठ भी प्रातः नमाज के लिए मस्जिद में आया। उसने क्रोधित होकर ा पूरा कलमा क्यों नहीं बोलते ? मुहमद साहेब का नाम क्यों नहीं बोलते ? रासी ने कहा, तुम्हारी दी हुई पगड़ी में जितना ज्ञान है वही मेरे मस्तिष्क है। जब यह पगड़ी बनी तब मुहमद साहेब थे ही नहीं इस लिए मेरे मुख तो वही कुछ निकलेगा जो पगड़ी में है। बस यही बात इन पश्चिमी ईसाई खकों की है। इनकी सृष्टि पांच छः सहस्र वर्ष की है तो यह वेद को दो अरब र्ष कैसे मानें ?

यह शिक्षा कल्याणी

पढ़ लो वेद की वाणी जो सुख पाना है—
परमेश्वर से प्रेम बढ़ाओ
आओ मन की मैल मिटाओ
ये शिक्षा कल्याणी जो सुख पाना है—

प्रात: जागो करो स्नान ।
आसन करके बनो जवान ।।
काबू कर जवानी जो सुख पाना है—
फल कर्मों का कभी न टलता ।
पक्ष कभी न ईश्वर करता ।।
करलो याद जवानी जो सुख पाना है—
जादू टोने कबरें छोड़ो ।
युग की उल्टी धारा छोड़ो ।।
छोड़ो सब मनमानी जो सुख पाना है—
मात-पिता का कहना मानो ।
देश उठाओ वीर जवानो ।।
रीति यही पुरानी जो सुख पाना है—

———

अस्पृश्यता—मरण-व्यवस्था

महर्षि दयानन्द जी ने शताब्दियों से चली आ रही एक और रूढ़िवादिता र प्रहार करके अपनी ऐक्यवाद की कड़ियों में एक और कड़ी जोड़ी। वेद-विमुख माज के कुछ जन्माभिमानी लोगों ने केवल जन्म के आधार पर अपने ही रोड़ों बन्धुओं को उनके धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक अधिकारों वंचित कर रखा था। दीनबन्धु दयानन्द ने शोषित तथा दलित वर्ग ी पुकार सुनी। उस युग की परिस्थिति को देखें तो ऐसे लगता है ानों दीन-दुखी की आहें देव दयानन्द के शुभ आगमन की राहें देख रही थीं। म पहले ही इतिहासज्ञ काशीप्रसाद जायसवाल के शब्द उद्घृत कर चुके हैं :—

"In the nineteenth century there was nowhere else such powereful teacher of monotheism, such a preacher of the ınity of man, such a successful crusader against capitalism n spirituality." अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी में विश्व भर में आध्यामिकता ूंजीवाद (विशेषाधिकार) के विरुद्ध सफल युद्ध करने वाला, मानवीय एकता का प्रचारक, एक ईश्वरवाद की शिक्षा देने वाला प्रतापी गुरु, देव दयानन्द सरीखा और कोई नहीं था।

एक अन्य विद्वान ने लिखा है कि दलित वर्ग को उठाने, अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए श्री शंकराचार्य से लेकर राजा राममोहन राय तक जो बात किसी भारतीय सुधारक और विचारक को न सूझी, दयानन्द ने दलितों के

लिए, अस्पृश्य समझे जाने वाले भाइयों के अधिकारों केलिए वेद के प्रमाण देकर सबको आश्चर्यान्वित कर दिया।

ऐक्यवाद का सिंहनाद गुंजाता हुआ वेदवादी दयानन्द जब, यथेमां वाचं कल्याणीम् आवदानि जनेभ्य:। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। —यजु० २६।२

वैदिक ऋचा लेकर शास्त्रार्थ के समर में उतरा तो जन्माभिमानी लोगों में खलबली मच गई। एक विदेशी इतिहास-लेखक श्री ई० ए० एच० ब्लंट ने The Caste system of Northern India पुस्तक पृ० ३३० पर इस दिशा में महर्षि की देन की चर्चा करते हुए लिखा हैं :—Of all the reformers that have attacked the caste system in the recent years, the most vigorous is the Arya Samaj, a religious body founded by Dayananad Saraswati. Of the theology of the Arya Samaj, no more need be said here, than that it is a bold, straight forward monotheism founded on the Vedas, with a definite creed and simple ceremonial, and that it constitutes the most important religious movement that has occurred for several centuries."

इसका सारांश यह है कि ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज सबसे सशक्त धार्मिक संस्था है जिसने जातिभेद पर आक्रमण किया है। इस संस्था के धार्मिक विश्वास के बारे में इतना कहना ही पर्याप्त है कि यह साहसी, स्पष्टवादी वेद पर आधारित एक ईश्वरवादी संस्था है। इसकी मान्यतायें निश्चित हैं, सरल कर्मकाण्ड है और गत शताब्दियों में जन्म लेने वाले धार्मिक आन्दोलनों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

ऋषि दयानन्द हिन्दू समाज के जाति-भेद को वेद-विरुद्ध मानते थे। वेद व्यवस्था को मानता है जाति-भेद को नहीं। आज के जाति-भेद ऋषि को मरण व्यवस्था कहा करते थे। साम्राज्यवादी पश्चिमी वेतन भोगी विद्वानों, इतिहास कारों एवं उनके अनुचर भारतीय विद्वानों ने जाति-भेद की निन्दा करते हुए वर्ण-व्यवस्था को भी जान-बूझ कर भ्रमपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। वरुण

का अर्थ चुनना भी है और रंग भी। पश्चिमी विद्वानों ने यह भ्रान्ति फैला रखी है कि आर्य लोग भारत में बाहर से आये। यहाँ के मूल निवासी काले थे और आर्य गोरे। आर्यों ने उनको शूद्र घोषित कर दिया और स्वयं ब्राह्मण बन गये।

"Had it been so, there should have been two divisions of society, One fair and the other dark" (Vedic Culture, P.166)

यदि ऐसा होता तो आर्यों में दो वर्ण होते, एक गोरे रंग के लोग और दूसरे काले, परन्तु आर्यों में चारों वर्ण माने गये हैं।

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने वर्ण व्यवस्था पर वैदिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए सारगर्भित शब्दों में लिखा है :—

"The analogy of the four limbs of the body which the Yajur Veda introduces and better than which has not been thought of in later times, is very significant. A head is head only so long as it functions as head, i. e. it leads the whole body and safeguards the interest of every member of the body. A head cut off from the body, is no head at all so far as its functions are concerned. Similarly, no Brahmana is a Brahmana if he ceases to be the trustee of the interest of the whole body...."

सारांश यह कि यजुर्वेद ने मनुष्य समाज को 'पुरुष' से उपमा दी है। पुरुष के चार अंगों से वेद ने समाज की जो उपमा दी है उससे अच्छी उपमा अभी तक कोई भी दे नहीं पाया। सिर तब तक सिर है जब तक वह सिर का कार्य करता है। इसी प्रकार ब्राह्मण भी ब्राह्मण नहीं रह सकता यदि वह सारे समाज के हितों की रक्षा नहीं करता।

महान् वेदज्ञ स्वामी समर्पणानन्द जी ने लिखा है कि वेद का उपहास उड़ाने वालों के सिर चढ़ कर वेद बोल रहा है। सारे विश्व में सामाजिक संगठन को 'आर्गेनाइजेशन' कहा जाता है। शरीर के अंगों से दूसरे लोग भी समाज की उपमा देते हैं। फ़ारसी भाषा में एक ने लिखा है—

'बनी आदम अजाए यक दिगरन्द ।'

अर्थात् आदम की सन्तान एक दूसरे के अंग हैं। Organisation शब्द भी Organ शब्द से निकलता है जिसका अर्थ है अंग। यह Organisation शब्द कहाँ से लिया गया? स्पष्ट रूप से मानना पड़ेगा कि यह वेद भगवान् की देन है। वेद ने ही सर्वप्रथम, मानव के शैशवकाल से भी पूर्व सामाजिक संगठन का जो आदर्श प्रस्तुत किया है वह 'पुरुष' शब्द में छिपा हुआ है। यदि वेद का आदर्श लुप्त न होता तो विश्व में भेद भाव की यह कृत्रिम दीवारें खड़ी न होतीं।

वेद एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से, एक जीव का दूसरे जीव से सम्बन्ध मानता है परन्तु यह सम्बन्ध शरीर का शरीर से नहीं। यह आत्मा का आत्मा से सम्बन्ध है। इस बात को हमें समझ लेना चाहिए।

"By denying a common parentage of all men, it has been shown that men are related to each other not on account of their having been born from one parent but because souls are social by nature. Birth, (physical birth) is after all an extrinsic thing and this has given rise not only to casteism, racism or communalism; but has made social integration difficult."

(Philosophy of Dayanand, Paragraph 758)

शारीरिक जन्म एक बाह्य वस्तु है। इसके कारण जाति भेद, वर्ण भेद और सम्प्रदायवाद उत्पन्न हुआ है। इसने सामाजिक एकता का कार्य कठिन बना दिया है।

आधुनिक युग में हिन्दू संस्कृति, हिन्दू संगठन, हिन्दू सभ्यता की दुहाई तो कई संस्थाओं ने दी और दे रही है परन्तु यह गर्व तो केवल ऋषि दयानन्द के सैनिकों को प्राप्त है कि महान् श्रद्धानन्द से भाई बंशीलाल वकील तक और उनके पश्चात् भी अनेक आर्यों ने जन्म के जाति बन्धन तोड़ कर अपने पुत्र व पुत्रियों के सम्बन्ध गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार जोड़े। जाति बन्धन तोड़ने की भावना जब तक जन-आन्दोलन का रूप धारण नहीं करती तब

ाक हिन्दू समाज का अस्तित्व प्रतिक्षण संकट में रहेगा। इस गम्भीर चुनौती को जितना शीघ्र अनुभव करें ठीक है, अन्यथा विनाश में कोई कमी नहीं। अपने आप को आर्य समाजी कहने वालों को भी सोचना होगा कि यदि वह ऋषि दयानन्द के सैनिक होने पर गौरवान्वित है तो फिर जाति भेद का ध्यान विवाह आदि के समय क्यों? फिर नाम के साथ यह जन्म जाति के चिन्ह किस लिए?

जय बोलो दयानन्द की

देश के सुवीर हो, कष्ट पीर चीर दो, पाप धाती वीर हो।
जय बोलो दयानन्द की
द्वेष को बिसार दो, विश्व को सुधार दो, वेद के विचार दो।
जय बोलो दयानन्द की
दुष्ट दल का दमन हो, शत्रुओं का दमन हो, हिंसकों का हनन हो।
जय बोलो दयानन्द की
आश का निवास हो, शक्ति भक्ति पास हो, लोभ का ह्रास हो।
जय बोलो दयानन्द की
वेद नित्य ज्ञान है, ईश का विधान है, मानवता का मान है।
जय बोलो दयानन्द की
दीन गो गुहारती, भारती पुकारती, आरती उतारती।
जय बोलो दयानन्द की
भेद भाव डोलता, विश्व राह टटोलता, काल आज बोलता।
जय बोलो दयानन्द की
प्यार को पुकार लो, पुण्य का प्रचार हो, सोच लो विचार लो।
जय बोलो दयानन्द की
सबका एक गान हो, भाव यह समान हो, यह सभी की तान हो।
जय बोलो दयानन्द की

———

सगुण अथवा निर्गुण ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज के आगमन से पूर्व भारत में सगुण और निर्गुण का भी बड़ा विवाद चलता रहा। भक्ति काल के कुछ लोग ईश्वर को सगुण मानते थे कुछ निर्गुण। भक्ति-आन्दोलन ने कुछ बातों में यदि मतैक्य पैदा किया तो कुछ बातों में विघटन भी पैदा कर दिया। आज तक भी पौराणिक हिन्दुओं में सगुण और निर्गुण का विवाद चला आ रहा है।

ऋषि दयानन्द ने विचारों के संसार में एक और धमाका किया कि ईश्वर सगुण भी है निर्गुण भी। प्राय: लोग आर्य समाज को निर्गुणवादी समझते हैं। शताब्दियों से जिस भ्रान्ति ने हिन्दुओं को दो विरोधी दलो में बाँटे रखा, देव दयानन्द ने अपने उर्वरा मस्तिष्क की एक ही मौलिक युक्ति से उस मिथ्या धारणा के धुर्रे उड़ा कर रख दिये।

ऐक्यवादी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है :—

प्रश्न—ईश्वर सगुण है वा निर्गुण ?

उत्तर—दोनों प्रकार है।

प्रश्न—भला एक म्यान में दो तलवार कभी रह सकती हैं ? एक ही पदार्थ में सगुणता और निर्गुणता कैसे रह सकती है ?

उत्तर—जैसे जड़ के रूपादि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं हैं। वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं हैं, इस लिए (यदगुणैस्सह वर्तमानं सत्सगुणम्, गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्।) जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहलाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से

रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, कि जिसमें केवल निर्गुणता वा केवल सगुणता हो, किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेष आदि जीव के गुणों से पृथक होने से निर्गुण कहलाता है।

प्रश्न—संसार में निराकार को निर्गुण और साकार को सगुण कहते हैं, अर्थात् जब परमेश्वर जन्म नहीं लेता, तब निर्गुण और जब अवतार लेता है तब सगुण कहलाता है।

उत्तर—यह कल्पना केवल अज्ञानी और अविद्वानों की है। जिसको विद्या नहीं होती, वे पशु के समान यथातथा बड़बड़ाया करते हैं, जैसे सन्निपात ज्वर युक्त मनुष्य अण्ड-बण्ड बकता है, वैसे ही अविद्वानों के कहे वा लेख को व्यर्थ समझना चाहिए।

(सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास-७)

स्वमन्तव्यामतव्य प्रकाश : में ऋषि जी ने लिखा है :—

'सगुणनिर्गुणस्तुति प्रार्थनोपासना' जो-जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो-जो गुण नहीं हैं उनसे पृथक मानकर प्रशंसा करना 'सगुणनिर्गुण स्तुति शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा और दोष छुड़ाने केलिए परमात्मा की सहायता चाहना 'सगुण निर्गुण प्रार्थना' और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपनी आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुण-निर्गुणोपासना कहलाती है।''

मानना पड़ेगा कि महर्षि दयानन्द ने सगुण और निर्गुण की युक्ति युक्त, वेदोक्त व्याख्या करके विश्व का एक और महा भेद भस्म कर दिया है। ऋषि की सूझबूझ व मौलिकता के इस चमत्कार ने मानव जाति को एक दिशा दिखाई है। कोई माने या न माने परन्तु यह एक तथ्य है कि ऋषि के एक वाक्य ने, एक पंक्ति ने शताब्दियों से खड़ी भेद-भाव की एक और दीवार को गिरा कर विचारों की ऊबड़-खाबड़ भूमि को समतल बना दिया। क्या ऐक्यवादी दयानन्द की यह देन कोई कम महत्व रखती है?

दर्शन शास्त्र को ऋषि की यह अद्भुत देन है कि प्रत्येक वस्तु सगुण भी

है और निर्गुण भी। ईश्वर सगुण भी है और निर्गुण भी। देव दयानन्द की इस निर्मल ज्ञान-धारा ने एक और व्यर्थ का विवाद मिटाकर मिलाप का, प्रीति का, सद्भावना का और संगठन का पाठ पढ़ाया। हम वेद-अनुयायी झगड़े खड़े करने केलिए नहीं। मिलाप केलिए हैं। हाँ, विघटन से संगठन के लिए युद्ध करते रहेंगे।

ओ३म का जाप करो

शुभ ओ३म् नाम सुखदायी ओ३म् का जाप करो
ओ३म् नाम वेदों में आया।
गीता उपनिषदों में आया॥
ओ३म् है परम सहाई ओ३म् का जाप करो
तीन ताप का हरने वाला।
भद्र भावना भरने वाला॥
भागे दूर बुराई ओ३म् का जाप करो
रोम रोम में रमा ओ३म् है।
विश्व नियन्ता वही सोम है॥
हम सभी वेदानुयायी ओ३म् का जाप करो
गया अंधेरा आंखें खोलो।
निर्भय होकर वीरो बोलो॥
ऋषि दयानन्द अलख जगाई ओ३म् का जाप करो
नश्वर लेखराम का प्यारा।
रोशन 'बिस्मिल' यही उच्चारा॥
फिर महर्षि रीत चलाई ओ३म् का जाप करो

मुक्ति-सोपान ? तीर्थ !

मानव जाति का दुर्भाग्य है कि चतुर, स्वार्थी, कुटिल और कुकर्मी लोगों ने बात-बात पर विघटन, वैमनस्य, विभिन्नता, फूट और अनेकता पैदा करने में पग-पग पर सफलता पाई है। ईश्वर के नाम पर मानव-जाति का विभाजन किया गया। ईश्वर के स्वरूप व गुणों को लेकर मनुष्यों को बाँटा गया। नरक और स्वर्ग के आधार पर भेदभाव की गहरी खाइयां खोदी गईं। ईश्वरीय ज्ञान, मोक्ष, मोक्ष के साधन, पूजा-विधि एवं सामाजिक जीवन पद्धति के आधार पर घृणा-द्वेष की दीवारें खड़ी की गईं। एक युग ऐसा भी आया कि ईश्वर पूजा के स्थान पर स्थान-पूजा की महत्ता बढ़ी। स्थान पूजा को इतना महत्त्व दिया गया कि जल-स्थल विशेष की यात्रा-मात्र से मोक्ष के द्वार खुलने लगे। कुछ लोगों ने ईश्वर के नाम के जाप के स्थान पर स्थान-विशेष और नदी-नालों के जाप को ही मुक्ति-सोपान मान लिया।

प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपने-अपने स्थान की महिमा बढ़ाने केलिए, अपने पवित्र माने जाने वाले स्थानों के सम्बन्ध में बड़े रोचक शब्दों में कहानियां बनाईं। इन पवित्र माने जाने वाले स्थानों का महत्त्व ऐतिहासिक व सांस्कृतिक न रहकर आध्यात्मिक बना दिया गया। जल-स्थल की यात्रा से पाप-ताप भस्म हो जाते हैं, इस भ्रान्ति का इतना प्रचार हुआ है कि शुभ कर्म की प्रवृत्ति मन्द होती जा रही है। विवेकहीनता बढ़ रही है। अनैतिकता को खुली छूट मिली हुई है। ये स्थान कदाचार के गढ़ बने हुए हैं। इन स्थानों को तीर्थ कहा जाता है। तीर्थ यात्रा धर्म का आवश्यक व अनिवार्य अंग बन चुका है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इन तथाकथित तीर्थों के कारण मानव

जाति को कई बार रक्त-स्नान करना पड़ा है। इन तीर्थों केलिए बड़े-बड़े भीषण युद्ध लड़े गये। एक ही सम्प्रदाय के लोग तीर्थ स्थान पर आधिपत्य जमाने केलिए परस्पर भिड़ गए। यूरोप के इतिहास में क्रिमिया के युद्ध का एक मुख्य कारण रोमन तथा युनानी चर्च का तीर्थ पर अधिकार जमाने का झगड़ा था। आज वह मध्य एशिया में ध्वस्त स्वरों में विध्वंस का राग गा रही है। इसका एक कारण युरुसलम पर आधिपत्य का प्रश्न भी है।

आचार्य दयानन्द ने 'तीर्थ' की शास्त्रोक्त व्याख्या करके मानव जाति को अपने उपकारों से और ऋणी कर दिया। ऋषि जी ने लिखा है :—

"प्रश्न—तो कोई तीर्थ, नाम स्मरण सत्य है वा नहीं ?"

उत्तर—है, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का सङ्ग, परोपकार, धर्मानुसार, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य भाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अनिथि, माता-पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्म युक्त पुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभ गुण-कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं और जो जल स्थलमय है वह तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि "जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि" मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे भी समुद्र आदि को तरते हैं।"

(सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास)

ऋषि जी ने फिर लिखा है :—

'तीर्थ जिससे दुःखसागर के पार उतरे कि जो सत्य भाषण, विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादि शुभ कर्म हैं उन्हीं को तीर्थ समझता हूँ इतर जलस्थलादि को नहीं।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश:)

वैसे तो मध्यकालीन कई सन्तों ने जल स्थलादि को तीर्थ नहीं माना। महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम जी ने भी सत्य कर्मों के बिना मोक्ष प्राप्ति को असम्भव ही बताया है। सिख गुरुओं की वाणी में भी इसी आशय के कई शब्द मिलते हैं परन्तु कुछ शब्दों में इससे विपरीत भाव भी है। एक सिख विद्वान पं० तारासिंह जी

ने एक पुस्तक 'श्री गुरु तीर्थ संग्रह' नाम की लिखी है। इस पुस्तक के विषय में वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ, सिख इतिहास के प्रकाण्ड पण्डित स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने अपनी पुस्तक 'आर्य सिद्धान्त तथा सिख मत' में लिखा है :—

"उन्होंने जो पुस्तक का नाम 'तीर्थ संग्रह' रखा, यह भी भ्रमोत्पादक है। यदि वह कोई अन्य नाम रखते, तो उत्तम होता। क्योंकि तीर्थ शब्द पर जो लोगों की भावना है, वह अज्ञान जन्य है। यह या तो अपना परिभाषिक अर्थ लिखते वा नाम और रखते। जैसा कि ऋषि जी ने तीर्थ शब्द का यौगिक अर्थ लिखा है।"

(पृ० १५९)

श्रद्धेय सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की पुस्तक का यह प्रमाण देने का हमारा प्रयोजन यही है कि पाठक महर्षि दयानन्द की एतद्विषयक देन को एक अद्वितीय विद्वान के शब्दों में समझ सकें। ऋषि ने तीर्थ शब्द के परिभाषिक अर्थ दिए हैं। यह ऋषि का महान् उपकार है। भ्रम-भञ्जक दयानन्द ने इस शब्द के यौगिक अर्थ देकर अनेक संशय भस्म कर दिये हैं। ऋषि ने 'तीर्थ' शब्द के सारगर्भित अर्थ देकर गुणियों का, तपस्वियों का, विद्वानों का, जन सेवकों का, यतियों, व्रतियों, पूज्यों व प्रभु भक्तों का अभिनन्दन करना सिखाया है। ऋषि ने चरित्र-निर्माण की और चरित्र-पूजा की वेदोक्त विधि एक 'तीर्थ' शब्द में दे दी है। संकीर्ण साम्प्रदायक कलुषित भावनाओं से मानव-जाति को बचाने का ऋषि का यह भी एक महान प्रयास है। इसका मूल्याङ्कन करने के लिए मन और मस्तिष्क दोनों की आवश्यकता है। विवेकहीन व हृदयहीन व्यक्ति देव दयानन्द की देन को क्या जानें।

यहाँ यह बात लिख देनी आवश्यक है कि टङ्कारा, मथुरा, अजमेर अथवा करतारपुर आचार्य दयानन्द की दृष्टि में तीर्थ नहीं। जो व्यक्ति अपने आपको ऋषि दयानन्द जी का श्रद्धालु बताकर टङ्कारा, अजमेर आदि की 'तीर्थ यात्राओं' का प्रचार कर रहे हैं वे कर्त्तव्य व विवेक दोनों को नहीं समझते। स्थान-पूजा तो जड़ पूजा है। स्थान पूजा ऋषि को अमान्य है। स्थान का ऐतिहासिक महत्त्व तो है आध्यात्मिक नहीं।

यह सूझ-बूझ देकर ऋषि ने ऐक्यवाद की भव्य भावना को और बलवत् बनाया है। इसमें विरोधियों को भी सन्देह नहीं हो सकता। उसके तरङ्गि हृदय ने यत्र-तत्र-सर्वत्र स्नेह बखेरा है। सूर्य निकला हो और कोई उस प्रकाश से लाभ न उठाये तो दोष सूर्य का नहीं।

सुधाकर पिला दो !

सुधा प्रेम की हे सुधाकर पिला दो।
हमें अपना सच्चा उपासक बना लो॥
हमें न किसी से कभी भय प्रभो हो।
सदा तेरे भक्तों की जय जय प्रभो हो॥
प्रभो हीन भावों से हमको बचालो·········

करो ज्ञान का मन भवन में उजाला।
धधकती हो जीवन में जीवन की ज्वाला॥
प्रभु सुप्त शक्ति हमारी जगा दो·········
तुझे हर्ष में शोक में हम न भूलें।
पिता प्यार की तेरी गोदी में झूलें॥
मति शुद्ध माता हमारी बना दो·········

सदा वेद के हम मधुर गीत गायें।
श्रुति गान से सब दिशायें गुंजायें॥
लगन यह प्रभु हम सभी को लगा दो·········
प्रभो वेद के भेद समझें सभी हम।
कुपंथों में भटके न ईश्वर कभी हम॥
प्रभु भाव भद्दे हमारे मिटा दो·········
विमल वेद धारा धरा पर बहावें।
दुखी दीन को हम गले में लगावें॥
हमें प्रेम से देव रहना सिखा दो·········

व्यवहार में ऐक्यवाद

अवैदिक दृष्टिकोण ने मनुष्यों की भावनाओं को इतना दूषित बना दिया है कि सामान्य व्यवहार में भी मानव अपनी मानवता खो बैठा है। हमारा परस्पर व्यवहार कैसा हो, इसका भी मापदण्ड एक न रहा। ऋषि दयानन्द जी ने व्यवहार-शुद्धि केलिए आर्य समाज के नियमों में लिखा है— "सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए।" ऋषि के इस एक वाक्य में संसार के समाज शास्त्र, आचार शास्त्र एवं राजनीति शास्त्र का सार छिपा है। गागर में सागर है। व्यक्ति व समष्टि दोनों की भलाई का राज पथ यही नीति-सूत्र है। इस वाक्य का एक-एक शब्द ऐक्यवादी दयानन्द के उदार हृदय की गहराई का परिचय देता है। इस वाक्य के 'यथा-योग्य' शब्द से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द को व्यवहार में किसी भी प्रकार का कृत्रिम भेद अमान्य है। **ऋषि के यथार्थवाद पर उसके आदर्शवाद का रंग है और उसका आदर्श यथार्थवाद से अछूता नहीं।** महर्षि धर्म को व्यवहार की वस्तु मानते हैं। यदि वह व्यवहार में किसी काम नहीं आता तो उसका लाभ ही क्या।

पहले भी हम बता चुके हैं और यहाँ पुन: उसको अधिक स्पष्ट करके लिखते हैं कि देव दयानन्द मानवों में एक ही भेद मानते हैं और वह है 'योग्यता का'। योग्यता से अभिप्रयाय पढ़ाई-लिखाई ही नहीं है। गुण, कर्म, स्वभाव, विद्या, सुशिक्षा ये सब व्यक्ति की योग्यता का परिचय देते हैं। 'यथा-योग्य' ऐक्यवाद की एक ध्वनि है। 'सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार' ये शब्द बेजान व निष्प्राण ही रहते यदि यथायोग्य साथ न होता। यथायोग्य शब्द ने

इस वाक्य को रीति-रिवाज के फैशन से बचा लिया है। केवल एक रिवाज पूरा करने या दिखावे मात्र के लिए ऋषि ने यह वाक्य नहीं रचा। इस वाक्य में मुनि दयानन्द का हृदय बोल रहा है। इसमें उसका दार्शनिक दृष्टिकोण ओतप्रोत है। यह वाक्य लोक हितैषी ब्रह्मचारी की भद्र भावनाओं से सुवासित है। उसकी दिव्य दृष्टि ने यथायोग्य शब्द इसमें जोड़कर इसको वह पूर्णता प्रदान की है जिसको लेखनी लिखने में सक्षम नहीं है। अधूरी व अस्पष्ट बात कहना व लिखना यह ऋषि की नीति व शैली नहीं। भेदभाव के भवन गिरा देने के लिए तथा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इससे बड़ी शिक्षा और क्या हो सकती है ?

महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में शिक्षा के वैदिक आदर्शों की चर्चा करते हुए लिखा है :—"सब को तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए।" ये शब्द इतने स्पष्ट हैं कि इन पर किसी प्रकार की टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। ऐक्यवादी दयानन्द सबको उन्नति के समान अवसर देने का सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं। ऋषि दयानन्द संसार को कर्म-भूमि मानते हैं इसलिए अकर्मा को वह पापी मानते हैं। कर्मशील बनने के लिए तपस्वी होना अनिवार्य है। विलासी, प्रमादी व कर्महीन को इस धरा पर श्वास लेने का कोई अधिकार नहीं। भगवान् वेद अपना प्रेरणाप्रद शब्द मे घोष करता है :—

"य:सुनवत: सखा तस्मा इन्द्राय गायत"

(ऋ० १-४-१०)

अर्थात् जो सवन करने वालों का सखा है, उस इंद्र के (परमात्मा एव शासक) गीत गाओ। सवन शब्द बड़ा भावपूर्ण है। प्रकाण्ड विद्वान स्वर्गीय स्वामी समपर्णानन्द जी ने इसका अर्थ किया है किसी पदार्थ से सार को खींचने वाला। अंग्रेजी में इसे Extraction कहा जाता है।

जब अध्ययन काल में वस्त्र, खान, पान, आसन में तुल्यता रखी जाएगी तो दरिद्र के बच्चे में आत्महीनता की और श्रीमन्त अथवा धनी मानी के बालक में अहंकार की दूषित भावनायें न उभरेंगी। आज Model schools

Convent schools हमारे राष्ट्र की नई पीढ़ी का सर्वनाश कर रहे हैं। ऐसी शिक्षा संस्थायें मानव के भविष्य को अन्धकारमय बना रही हैं। इन संस्थाओं में पढ़कर धनियों के बच्चे अहंकार (Superiority Complex) के मानसिक रोग के शिकार हो रहे हैं और निर्धन बालक योग्य व दक्ष होने पर भी हीनता से ग्रसित हो रहे हैं। देश में भावात्मक एकता पैदा हो तो कैसे ? ऐक्यवादी दयानन्द को यह सब कुछ अमान्य है।

इन्हीं दिनों पुरी के शंङ्कराचार्य ने अस्पृश्यता का पक्ष लेकर पौराणिकता की गली-सड़ी लाश को अनुप्राणित करने का एक विफल प्रयास किया है। यह शव तो क्या उठेगा। हाँ, आर्य सन्तान को इस प्रकार के लोगों से जो हानि हो रही है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वर्ण व्यवस्था पर हम पहले लिख चुके हैं यहां व्यवहार में ऐक्यवाद पर प्रकाश डालते हुए ऋषि के निम्न वाक्य लिखना भी अनुपयोगी न होगा :—

"किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े हाथी रथ पर चढ़ या पैदल होके मारते जाना अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढता से इन लोगों ने चौका लगाते-लगाते विरोध करते-कराते सब स्वातन्त्रय आनन्द धनु राज्य विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पका कर खावें। परन्तु वैसा न होने पर जानों सब आर्यवर्त्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है। हां, जहाँ भोजन करें उस स्थान को धोने, लेंपन करने, झाड़ू लगाने, कूड़ा करकट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिए न कि मुसलमान ईसाइयों के समान भ्रष्ट पाकशाला करना।"

(सत्यार्थप्रकाश:, दशम समुल्लास:)

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि ऋषिवर कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को आचार-अनाचार मानते हैं। उनके सामने भक्ष्य अभक्ष्य का स्वच्छता व अपवित्रता का नैतिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। वे चौक चूल्हे को व्यर्थ का महत्त्व देकर भेद की रेखा खींचने के घोर विरोधी हैं। ऐक्यवादी ने इस भेद को दूर करने के लिए श्रुति के प्रमाणों की झड़ी लगा कर दम्भियों में खलबली मचा दी।

उसके विचारों की लहरों पर संसार नाच रहा है। आज शंकराचार्य की
चारों ओर हो रही है। सनातन धर्म सभा ने भी उसकी निंदा करके ऐक्य
दयानन्द के गतिमान व्यक्तित्व का प्रभाव स्वीकार किया है ?

आज आर्यों के छोटे-छोटे बच्चे जब

'संगच्छध्वं सं वदध्वं···'

'समानो मन्त्र: समिति समानी···'

'समानी व आकूति:···'

'समानी प्रपा सह वो ऽन्नभाग:···'

आदि वेद मन्त्रों का गगन भेदी गान करते हैं तो ऐक्यवादी भावना
वाले प्रत्येक व्यक्ति का हृदय समुदित हो उठता है।

बदल दो जमाना

उठो ! आर्यों फिर बदल दो जमाना। उठो प्यार का फिर सुनाओ तरान
उठो ! मौत से जूझने का समय है। तुम्हारे भले के लिए यह विनय
यह बातें बनाकर समय न गंवाना···
तुम्हारी तो है रक्त रंजित कहानी। तुम्हें है जवानी वतन पर लुटान
तुम्हें भाग्य है फिर वतन का जगाना···
उठो लोरियाँ वेद की फिर सुनाओ। श्रुति ज्ञान से सब दिशायें गुंजाओ
सभी प्राणियों को है निर्भय बनाना···
उठो देश की कामना कांपती है। उठो ! प्यार की भावना हांपती
तुम्हें फूट के दैत्य को है मिटाना···
उठो जाति पाती की जड़ काट डालो। उठो ! लाज लुटती वतन की बचाल
कभी बाद में फिर न आंसू बहाना।
उठो ! आर्यों फिर बदल दो जमाना ॥

ऐक्यवाद का दिव्य दर्शन

एक बार मैं आर्यसमाज मांटुगा के निमंत्रण पर बम्बई गया। आर्यसमाज न्दिर के पीछे की ओर घूमने फिरने चला गया। वहां मद्रासी भाइयों का क मन्दिर है। मैं जब कभी बम्बई जाता हूँ तो उस मन्दिर में अवश्य जाता । मन्दिर में मूर्तियाँ हैं। मूर्ति पूजक आते हैं। मूर्तियों के आगे माथा टेक कर छ भजन-कीर्तन सुनकर, घण्टा बजाकर, थोड़ा प्रसाद लेकर चले जाते हैं। उस न्दिर के निकट एक और मन्दिर है। उसमें भी मूर्तियां हैं। वही मूर्तियाँ हैं कुछ वशेष भेद नहीं। वहां भी मूर्ति पूजक आते हैं। यह मन्दिर गुजराती भाइयों ा है। इस मन्दिर वाले उस मन्दिर में नहीं जाते। मैंने इन दोनों मन्दिरों जाकर यह प्रश्न किया कि इतनी थोड़ी दूरी पर यह दूसरा मन्दिर क्यों? त्तर मिला, यह गुजरातियों का है वह मद्रासियों का है। दोनों ही मूर्ति पूजक मूर्तियां भी लगभग वहीं हैं किन्तु पूजा का ढंग पृथक पृथक है। उपासना द्धति ही एक नहीं। भारतीय संस्कृति का घोष लगाने वाले बन्धु उस दुःख ो अनुभव नहीं कर सकते जो दुःख मुझे अपने प्रश्न का उत्तर पाकर हुआ?

कई लोग तो झट कह देते हैं कि हिन्दू धर्म तो एक गहरा व विशाल ागर है। इसमें विशालता और उदारता है। सहनशीलता है परन्तु गहराई तनिक सोचिए कि फूट और विचार भेद के अतिरिक्त इसमें है क्या? एकता का सूत्र है ही नहीं। अम्बाला, रोहतक व मथुरा में जाने वाला व्यक्ति ूना के मन्दिर की प्रार्थना में भाग नहीं ले सकता। उसको वहां की प्रार्थना द्धति में कुछ भी समझ में नहीं आ सकता। पूना वाला आगे जाकर बंगला, मैसूर व मद्रास में अपरिचित बन जाएगा। उसको वहाँ की पद्धति का कुछ भी पता नहीं।

बंगलौर में विश्वेश्वरपुरम में आर्यसमाज मन्दिर है। आर्यसमाज के मन्दिर से ५० गज की दूरी पर एक पौराणिक मन्दिर है। उस मन्दिर के समीप एक और पौराणिक मन्दिर है और इन दोनों से कुछ दूरी पर एक और बड़ा मन्दिर दीखता है। सबका अपना-अपना राग, अपना-अपना ढपली अपना-अपना ढंग, अपनी-अपनी पद्धति, अपना-अपना मन्त्र। बताइये एकता कैसे हो ? यह है पौराणिक जगत का स्वरूप।

अब लीजिये दयानन्द के ऐक्यवाद का दिव्य रूप। आचार्य भगवानदास जी पांच वर्ष शोलापुर रहे। वहां आँध्र, मैसूर व महाराष्ट्र के दूर-दूर के आर्य भाई उनसे आर्य समाज के संगठन व प्रचार के लिए मार्ग दर्शन लेने आते थे। ऐसा क्यों ? इसलिए कि ऋषि ने हमें वेद की पूजा नहीं सिखाई वेद का जीवित धर्म दिया है, हमें एक ईश्वरवाद दिया है। एक संध्या दी है। एक पूजा-विधि दी है। एक संस्कार-विधि दी है। अभिवादन का एक मधुर कोमल शब्द 'नमस्ते' दिया है। हमें एक नाम दिया है।

मैं जब प्रथम बार बंगलौर पहुंचा तो एक सज्जन अपने दो पुत्रों सहित वैधिक धर्म में प्रविष्ट होने के लिए आए। आर्य समाज के सुविख्यात कन्नड विद्वान श्री पं० सुधाकर जी वहां विद्यमान थे। एक अन्य विद्वान भी विद्यमान थे। मुझे कहा गया कि आसन पर बैठो और इनका शुद्धि संस्कार कराओ। मैं ना नहीं कर सका और उनकी आज्ञा का पालन किया। हम सबने मिलकर यज्ञ-हवन-संध्या की। मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न थी। मुझे ऐसे लग रहा था मानों मैं आर्यसमाज, लक्ष्मणसर अथवा अमृतसर या आर्यसमाज गीदड़बाहा में बैठा हूँ। मेरे आर्य मन्दिर से थोड़ी दूरी पर ही तीन और मन्दिर थे जिनमें सहस्त्रों मूर्तिपूजक आते जाते देखे गए। परन्तु सहस्त्रों की भीड़ थी सहस्त्रों का समाज न था। भीड़ और समाज में भारी अन्तर है। हम समाज मन्दिर में थोड़े से व्यक्ति थे परन्तु समाज था। हमने मिलकर एक स्वर से एक विधि से उपासना की। यह सौभाग्य उसी को मिल सकता है जो ऋषि दयानन्द की विचार-धारा का अमृत-पान कर चुका है। भारत के एक भाग का हिन्दू दूसरे भाग में जाकर किसी मन्दिर में माथा भले ही रगड़ दे परन्तु वह पूजा विधि से अनभिज्ञ होने के कारण उसमें भाग नहीं ले सकता। यहं

कारण है कि भारत की राजधानी दिल्ली में बंगालियों, मद्रासियों व मराठों के अलग-अलग मन्दिर हैं।

दक्षिण में भी यही दुर्दशा है। मारवाड़ियों, पंजाबियों, गुजरातियों, मराठों सबके अलग-अलग मन्दिर हैं। पानीपत में आज भी एक प्राचीन मराठा मन्दिर विद्यमान है। यह १७६१ ई० के ऐतिहासिक युद्ध के समय का है। यह मन्दिर ही भारत के पतन की कहानी का मूक स्मारक है। मराठे वहां देश के लिए कट कट कर मरे परन्तु विजयी न हो सके। इसके अनेक कारण हैं। एक मुख्य कारण तो यह भी है कि ईरान का अहमद शाह मुसलमान होने के नाते अवध के मुसलमान की सहायता, सहयोग, सद्भावना, व सहानुभूति प्राप्त कर पाया परन्तु, मराठों को पूजा के लिए मन्दिर भी पृथक बनाना पड़ा। हमारी इन्हीं भूलों के कारण आदर्श राष्ट्रीयवीर, अतुल्य पराक्रमी छत्रपति शिवाजी महाराज का तप त्याग निष्फल गया। हम स्वाधीनता से वंचित हो गये। शिवाजी के किए-कराए पर हमने पानी फेर दिया।

ऐक्यवादी दयानन्द का यह प्रताप है कि महाराष्ट्र, मैसूर, आँध्र, आदि प्रदेशों में उत्तर भारतीय आर्य समाजियों के पृथक मन्दिर नहीं। हम शोलापुर में सगर्व अपने मराठा व गुजराती, कन्नड़ व तेलगू भाइयों के साथ समाज के सत्संगों में भाग लेते रहे। मराठावाड़ के गुंजोटी व औराद के आर्य वीरों के प्रेम व आत्मीयता का स्मरण करके आज भी मेरी धमनियां फड़क उठती हैं। अनायास मुख से निकलता है :—

दयानन्द देश हितकारी ।
तेरी हिम्मत पै बलिहारी ।।

ऋषि ने हमें प्रान्तीयता के विष से बचाया। जाति बन्धन से छुड़ाया। एक ओ३म् का जाप सिखाया। एक गुरु मन्त्र गायत्री दिया। यदि ऋषि के ये भाव हम सबके जीवन में समा जावें तो मानवता का सोया भाग्य जाग उठेगा। अध अज्ञान भाग जाये। ऋषि का स्वप्न साकार होगा। आओ सस्वर गायें :—

महर्षि का ऐक्यवाद

हृदयों में हो निनाद ।
महर्षि का ऐक्यवाद ।।
ये पुनीत दो विचार ।
विश्व का करो सुधार ।।
व्यर्थ के मिटें विवाद...

ओइम् नाम का हो जाप ।
दूर होंगे तीन ताप ।।
गगन भेदी भव्य नाद...

विघ्न की है मुख्य बात ।
हिन्दुओं की जात पात ।।
सफलता का अन्त आद...

ईश का है वेद ज्ञान ।
मानकर बनो सुजान ।
हों कहीं नहीं फिसाद...

हों उदार भव्य भाव ।
विश्व में न हो अभाव ।
तज प्रमाद स्वप्नवाद ।
हृदयों में हो निनाद
महर्षि का ऐक्यवाद ।।

ऋषि का ऐक्यवाद व आशावाद

बनाना कठिन है। बिगाड़ना सुगम है। वैर, द्वैष, विघटन की शक्तियों को उभारना सरल है। निर्माण, एकता, प्रेम, संगठन की शक्तियों का पोषण बड़ा कष्ट साध्य कार्य है। संसार में और विशेष रूप से हमारे देश में विनाश की, विघटन की, वैर की, विरोध की अनेक शक्तियां सक्रिय हैं। ऐक्यवाद में विश्वास रखने वालों के साधन भी स्वल्प हैं। जान जोखिम में डालने वाला कार्य है। काल कराल की कुचाल को देखकर अनेक सज्जन पुरुषों का दिल बैठ जाता है। भविष्य अंधकारमय दीखता है। विकट विषम परिस्थितियों का ध्यान करके व्यक्ति हताश, उदास व निराश हो जाते हैं। ऐसी विषम वेला में ऐक्यवादियों को आशावाद के अग्रदूत आचार्य दयानन्द के ये वाक्य बार-बार पढ़ने चाहिए :—

प्रश्न—जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—नहीं, बनाने में क्या प्रयोजन है ?

प्रश्न—जो न बनाता तो आनन्द में बना रहता और जीवों को भी सुख दु:ख प्राप्त न होता।

उत्तर—वह आलसी और दरिद्र लोगों की बातें हैं पुरुषार्थी की नहीं। और जीवों को प्रलय में क्या सुख व दु:ख है. जो सृष्टि के सुख दु:ख की तुलना की जाय तो सुख कई गुना अधिक होता और बहुत से पवित्रात्मा जीव मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते हैं।

महर्षि के इन शब्दों को मैं आशावाद का अधिकार पत्र (Magna carta) कह दूं तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। श्रेद्धय पं० गंगा प्रसाद

उपाध्याय ने अपने एक अंग्रेजी ग्रंथ में लिखा है कि महर्षि के ग्रथ रत्न सत्यार्थ प्रकाश के सर्वाधिक मूल्यवान रत्न ये उपरोक्त विचार हैं। ऋषि की दृष्टि में कर्मण्यता जीवन है। अकर्मण्यता अधर्म है। 'संसार में दुःख ही दुःख है'। यह अनार्ष विचार ऋषि को अमान्य है। जितने सबल प्रबल शब्दों में ऋषि ने इसका प्रतिवाद किया, सम्भवतः विश्व के इतिहास में किसी और ने ऐसा न किया हो।

कर्मफल सिद्धान्त के मानने वालों का निराशावाद से सम्बन्ध ही क्या? कर्मफल सिद्धान्त उज्जवल भविष्य का, न्याय का, सदाचार का अटल आश्वासन है। एक विचारक ने लिखा है :—

"Just as we deem it a charter of freedom that one cannot in law be robbed of the fruit of one's labour, the law of Karma is the Magna Carta of free will."

अर्थात् जैसे ही यह अधिकार पत्र समझते हैं कि राज्य अधिनियम के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके श्रम के फल से वंचित नहीं किया जा सकता ऐसे ही कर्मफल सिद्धान्त जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता का यशस्वी अधिकार पत्र है।

वैदिक दर्शन के विद्वान पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है :—

"Thus vedic philosophy is always optimistic. It helps us in always hoping for the better. No eternal hell. No eternal heavan. No eternal doom. The door of bless is always open."

(Vedic Philosophy, P. 14)

अर्थात् वैदिक दर्शन सदैव आशावादी है। यह सदा हमें कल्याण अथवा भलाई की आशा बंधाता है। न सदा के लिए नरक न सदा के लिए स्वर्ग। न सदा का दण्ड (या विनाश।) आनन्द का द्वार, कल्याण का द्वार सदैव खुला है। वैदिक धर्म तो मोक्ष से लौटने का भी सिद्धान्त मानता है। ऋषि का तर्क स्पष्ट है। जिसका आदि है उसका अन्त होगा ही।

ऋषि की विचारधारा का अमृत पान करने वालों को कर्मठता का परिचय देते हुए बुराई कुटिलताई से लड़ाई करनी होगी। इसके बिना ऐक्यवाद

विजयी असम्भव है। केवल विचार ग्रहण करने और उनमें विश्वास मात्र से कुछ भी हाथ न लगेगा। विचारों को कार्यान्वित करने के लिए ऋषि के पुरुषार्थ व परमार्थ के स्फूर्तिदायक रंग में अपने आप को रंगना पड़ेगा।

राष्ट्रवीर अतुल्य बलिदानी राजनेता स्वातन्त्र्य वीरसावरकर ने काले पानी से अपने भाई को एक पत्र में एक बड़ी मार्मिक बात लिखी थी। आपने अपने भाई को इतिहास का एक कठोर सत्य लिखा :—

"Talk of Vedanta! Benaras has not produced a single martyr."

Letters from Andamans, Page 452
Samagra Savarkar Wangmaya Volume V

इसका भाव यह है कि नवीन वेदान्त (अद्वैतवाद) की बातों में क्या रखा है? काशी में बड़े-बड़े पंडित रहे हैं परन्तु काशी ने मातृ भूमि के लिए एक भी हुतात्मा को जन्म नहीं दिया।

इसके विपरीत हम देखते हैं कि दयानन्द देश हितकारी की चेतना की चिनगारी के परिणामस्वरूप एक दो दस बीस नहीं, अनेको छोटे बड़े वेदाभिमानी आर्यों ने देश धर्म हित बलिवेदी पर अपने शीश भेंट किये हैं।

तत्त्ववेत्ता पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय के विद्वान पोते डा० विमलेश जी ने ऐक्यवादी दयानन्द की जीवनदायिनी विचारधारा के सम्बन्ध में सारगर्भित शब्दों में लिखा है :—

"He has given us a bold philosophy of the reality of god, reality of man and the realities of the universe in which man has to work. He is a philosophy of bold actions, not of idle musings."

अर्थात् महर्षि दयानन्द ने हमें एक वीरोचित दर्शन दिया है। उसने ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध में, मनुष्य की सत्ता व ब्राह्मण्ड की सत्ता जिसमें मनुष्य को कार्य करना है, एक सच्चा दर्शन दिया है। उसका दर्शन वीरोचित कार्यों का, कर्मठता, कर्मण्यता का दर्शन है। यह बेकार, निरर्थक चिन्तन का दर्शन नहीं।

ऐक्यवादी दयानन्द ने हमें अनादि ईश्वर का अनादि ज्ञान वेद दिया है। वेद ने हमें आर्य नाम दिया है। आर्य किसको कहते हैं? वेद स्वयं इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है :—

आर्य ज्योतिरग्राः। (ऋ० ७. ३३. ७.)

आर्य प्रकाश का अनुगामी होता है।

प्रकाश आशावाद का प्रतीक है। अंधकार निराशा का। अतः हम आर्यों को आशावाद का परिधान पहन कर युग-निर्माण में जुटना चाहिए। आज अंग्रेजी भाषा के मलीन संस्कारों के कारण हम अनजाने में निराशावाद के ग्रास बन रहे हैं। अंग्रेजी भाषा में निराशावाद ओत-प्रोत है। एक छोटा सा बालक रुग्ण हो तो डाक्टर पूछता है कि इसकी आयु क्या है। अंग्रेजी में पढ़े लिखे माता पिता अंग्रेजी में उत्तर देते हैं :—

"He is six months old" यह छः मास का बूढ़ा है। एक बीस वर्षीय स्वस्थ तरुण अंग्रेजी में अपनी आयु बताते हुए कहता है, "I am Twenty years old" मैं बीस वर्ष का बूढ़ा हूँ! जो भाषा छ मास के बालक को और बीस वर्ष तरुण को old (बूढ़ा) बना देती है। वह न चाहते हुए भी हमें निराशावाद का विषपान करा रही है। राष्ट्र भाषा हिन्दी में हमने किसी बूढ़े से भी आयु पूछनी हो तो यह नहीं कहते 'श्रीमान जी आप कितने बूढ़े हैं?' ऐसा प्रश्न अशिष्टता का सूचक है। हम पूछते है श्रीमान जी आप कितने बड़े हैं? हमारे यहां बूढ़े को वृद्ध कहा जाता है। वृद्ध वह है जिसने वृद्धि की हो—ज्ञान में, कर्म में, सेवा में, यश में, तप में।

निराशा का यहाँ कोई कार्य नहीं। इसलिए हमें ऋषि के प्रेरणाप्रद विचारों से नवजीवन पाकर सब प्रकार के कृत्रिम भेद-भाव नष्ट करने का अभियान चलाना चाहिए। ऋषि ने ज्ञान, कर्म, उपासना, (ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग, भक्ति मार्ग) के नाम पर पैदा की गई शत्रुता को दूर करने का आन्दोलन चलाया। सूझ-बूझ से वैदिक पथ दिखा कर ज्ञान, कर्म, उपासना का सम्बन्ध किया। ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों की महत्ता व आवश्यकता बताई। आज पुनः कुछ लोग ज्ञान, कर्म, भक्ति को एक दूसरे से अलग व विरोधी सिद्ध करने का दुःसाहस कर हमें पतनोन्मुख करना चाहते हैं। शास्त्रों की

अवहेलना करके जगराते, नाम जाप, कल्पित गुरु मन्त्रों के जाल में फंसाकर ऐक्यवाद के प्रसार में बाधक बनना चाहते हैं। हमें आशावादी बनकर ध्रुव निश्चय से यह घोषणा करनी चाहिए :—

भावों की भीषण ज्वाला को सीने में कौन दबा सकता।
अलबेले दृढ़ संकल्पी को रास्ते से कौन हटा सकता॥

पाठक वृन्द ! आओ वीर साधु दयानन्द के गतिमान व्यक्तितत्व व वीर दर्शन से अनुप्राणित होकर सब ऐक्यवाद का शंखनाद कर देश और विश्व का नवनिर्माण करें।

शिव संकल्प

ओ३म् की लेकर पताका पग सदा आगे धरेंगे।
पूर्ण प्रण अपना यह अपने प्राण देकर भी करेंगे॥
हों विकट संकट चहूँ दिश साथ साथी छोड़ दें।
हम न विचलित हों भले बन्धु स्वजन मुख मोड़ लें॥
हम सदा जी जान से अज्ञान से डटकर लड़ेंगे...
हैं स्वल्प साधन हमारे यह तो हम सब मानते हैं।
है अतुल बल दैत्य दल का हम यह सब कुछ जानते हैं॥
हम अडिग विश्वास ईश्वर का लिए आगे बढ़ेंगे...
हमको सौंपी वेद पावन की प्रभु ने सम्पदा।
हम धरा में देन दैवी यह लुटायेंगे सदा॥
मानवों में हम उमंगे भद्र भावों की भरेंगे......

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्य विद्या, और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिएं।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

[illegible], सुरेन्द्र कुमार, चुन्नीलाल मालूजा, हरवंस लाल [illegible] डी० अडवानी।

मलोट : श्री [illegible] आर्य

मसूरी : श्री [illegible]

मैसूर : सर्वश्री [illegible], के० आर० कुमार

मौरीशस : श्री [illegible]

लखनऊ : श्री [illegible]

लुधियाना : श्री [illegible]

शोलापुर : सर्वश्री [illegible], वंशीलाल गोदानी।

सिकन्दराबाद : श्री [illegible], डा० [illegible] मेहता।

सूरत : सर्वश्री [illegible], [illegible] डी० अडवानी, श्रीमती सावित्री देवी, [illegible]

सोनीपत : महात्मा [illegible]



आर्य धर्मार्थ [illegible] विजय नगर

पीड़ितों की सहायता अपनी सहायता है।

रोगियों की सेवा प्रभु की सच्ची सेवा है॥

आर्य कुमार सभा किंग्जवे ने जनता की सेवार्थ एक धर्मार्थ चिकित्सालय चलाया हुआ है, जो २१ मार्च १९५९ से सुचारु एवं [illegible] रूप से चल रहा है। इसमें डा० [illegible] वर्मा निःशुल्क कार्य कर रहे हैं।

जिन सज्जनों ने १० रुपये या इससे अधिक दान दिया है उनके नाम निम्नलिखित हैं :—

श्री रामरक्खा हण्डा,

राम कुटीर [illegible]। १० रु० मासिक

श्री जसवंत सिंह आलम, पंजाब नेशनल बैंक, दिल्ली। १० रु० मासिक

श्रीमती सावित्री देवी ढांड ४७ ई/११ [illegible] किंग्जवे कैम्प, दिल्ली-९ १०१ रु०

दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि दान देकर अपने धन को सफल बनायें।

तिलक राज संडूजा

चिकित्सालय मंत्री

आर्य कुमार सभा किंग्ज़वे दिल्ली द्वारा प्रकाशित
प्राप्य साहित्य

		मूल्य पैसों में
अमर सेनानी स्वा० श्रद्धानन्द	(ब्र० जगदीश विद्यार्थी एम० ए०)	१.००
वेद प्रिय क्यों ?	(श्री काशीराम चावला)	०.६५
महात्मा हंसराज	(श्री कृष्णकुमार गोस्वामी एम० ए०)	०.०६
सत्यार्थसुधा (पूर्वार्द्ध)	(ब्र० जगदीश विद्यार्थी एम० ए०)	१.००
सत्यार्थसुधा (उत्तरार्द्ध)	(,,)	१.००
महर्षि का ऐक्यवाद	(प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु एम० ए०)	१.००
सितारों के आगे जहाँ और भी है।	(चौधरी रामचन्द्र एम० ए०)	०.६०